ॐ

स्वामी रामतीर्थ

भाग २३ वां

परमहंस स्वामी रामतीर्थ

प्रकाशक,

श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन लीग ।

लखनऊ ।

वर्ष चौथा] श्री रामतीर्थ ग्रन्थावली [खण्ड पाँचवाँ

श्री

स्वामी रामतीर्थ

उनके सदुपदेश–भाग २३।

प्रकाशक

श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग।

लखनऊ।

म संस्करण } ——:※:—— { अगस्त १९२३
ते २००० } { भाद्र १९८०

फुटकर

बिना जिल्द ॥ᐠ) } डाक व्यय रहित। { सजिल्द ॥।=)

विषय सूची ।

विषय	पृष्ठ
राम चरित्र नं० (गतांक से आगे)	१
यज्ञ का भावार्थ	२२
एकता	५७
शान्ति का उपाय	६६
भारत वर्ष की प्राचीन अध्यात्मता	१०६
सभ्यसंसार पर भारत वर्ष का अध्यात्म-ऋण	१२८
युवा संन्यासी	१५६

के० सी० बनर्जी के प्रबन्ध से
ऐंग्लो-ओ-रियन्टल प्रेस, लखनऊ में छपी—१९२३

परमहंस स्वामी राम तीर्थ जी महाराज ।

का

संक्षिप्त जीवन चरित्र ।

अलग पुस्ताकार में छप कर तैयार है। जो सज्जन ग्रन्थावाली के भिन्न २ भाग मंगवा कर राम जीवनी को नहीं पढ़ सकते, वे इस छोटे से ग्रन्थ को मंगवा कर अवश्य पढ़ें, क्योंकि इस में स्वामी राम की उत्पत्ति काल से लेकर देह त्याग तक का समग्र हाल सरल भाषा में क्रमानुसार संक्षेप से दिया हुआ है। कोई भी पाठक, विशेष करके महात्माओं के चरित्र में प्रीति रखने वाला, इस से बिना लाभ उठाय के नहीं रह सकता। सदाचार के प्रेमी इसे अवश्य मंगवा कर लाभ उठायें। मूल्य प्रति कापी ।)

मैनेजर

श्रीस्वामी रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग

लखनऊ।

निवेदन ।

ईश्वर का धन्यवाद है कि ठीक नियत समय पर अर्थात् सितम्बर मास के भीतर २ हम यह तईसवां भाग आप स्थाई ग्राहकों की सेवा में भेज सके हैं। यदि ईश्वर की कृपा और आप लोगों का प्रेम व उत्साह इसी प्रकार निरन्तर बने रहे, तो आशा है कि अगला भाग चौबीसवां भी ठीक समय पर अर्थात् नवम्बर मास के भीतर २ प्रकाशित होकर आप की सेवा में पहुंच जायगा। पर रामप्यारोंको भी अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिये जबकि लीग उन की सेवा में पूर्ण बल से काम रही है। अभी तक बहुत ही थोड़ी संख्या ग्राहकों की उन्हों ने गत दो मास में बढ़ाई है। इस लिये उन्हें पुनः प्रेम पूर्वक प्रार्थना की जाती है कि वे कृपया इस ओर ध्यान दें और दिन प्रति दिन ग्राहकों की संख्या की वृद्धि दिन द्विगुणी और रात चौगुणी करें जिस से लीग उन की और समस्त धार्मिक संसार की सेवा उत्साह पूर्वक कर सके और इस प्रकार अपने कर्तव्य पालन में सफल हो।

श्री स्वामी नारायण कृत गीता भाष्य के शेष भागों के प्रकाशनार्थ जो दान राम भक्तों से प्राप्त हो रहा है, उस में जो रकम १०००) रु० महाराजा साहिब लिम्बड़ी (काठियावाड़) से और १५०) रु० रियासत कोट की प्रजा से गत दो मास में प्राप्त हुई थी, उसकी धन्यवाद पूर्वक स्वीकृति गत अंक में प्रकाशित हो चुकी थी। इस मास पंजाब प्रांत के नौशहरा नगर के राम प्यारे सरदार ध्रुवासिंह जी ने अपनी मित्र मंडली से ६०) रु० एकत्र करके भेजे हैं जिसे लीग धन्यवाद पूर्वक स्वीकार करती है, और आशा करती है कि यदि इसी प्रकार रामप्यारे दान एकत्र करके भेजते रहेंगे, तो शीघ्र शेष भाग प्रकाशित हो जायंगे।

मन्त्री

श्री स्वामी रामतीर्थ.

आगरा १९०२

ॐ

राम-चरित्र नं० २

(गतांक से आगे)

राम तू ही है कहां राम है किस पर माइल ।
देख कर हाल तेरा ज़ार भर आता है दिल ॥
तेरी ही तेग़ तुझे दे गई चरका क़ातिल ।
हो गया अपनी ही तू आप अदा पर बिसमिल ॥
आप ही राम है तू, मुफ़्त में बदनाम हूं मैं ।
मुँह से कह 'राम हूं मैं' 'राम हूं मैं' 'राम हूं मैं' ॥१६

नाक, कान, आँख, जुबाँ तेरी नहीं, राम की है ।
तेरे क़ालिब में भी जाँ तेरी नहीं, राम की है ॥
अक़्ल है, देख कहां तेरी नहीं, राम की है ।
जिस्म में रुह रवाँ तेरी नहीं, राम की है ॥
तेरा कुछ भी नहीं जब तेरा दिलाराम हूँ मैं ।
राम के मुँह से तू कह "राम हूं मैं" "राम हूँ मैं" ॥१७

चमने-दहिर में फूलों में महक किसकी है ।
ज़र्रे ज़र्रे में ज़रा देख चमक किसकी है ॥
बर्क़ अरु राद में जुज़ मेरे कड़क किसकी है ।
दिल के आईने में देख अपने झलक किसकी है ॥
मेहर हूं, माह हूं, बालाये-तर अज़ बाम हूं मैं ।
मुँहसे कह "राम हूं मैं" "राम हूं मैं" "राम हूं मैं" ॥१८।

राम के हुक्म से बेखौफ़ी से कह "मैं हूं राम" ।
वर्ना "मैं बन्दा हूं" "मैं बन्दा हूं" कह २ के गुलाम ॥
सारी दुनिया में चला राम का यह सिक्कये-आम ।
मुहर उस लब पे कि जिस लब पे न हो राम का नाम ॥

माइल—आकर्षित, बिसमिल—जख्मी, रूहरवां—चैतन्य आत्मा, चमने दहिर—दुनिया का बाग, बर्क—चपला, राद—बादल की गड़गड़ाहट, माह—चन्द्रमा ।

खिलवते-ख़ास हूं मैं जल्वा गहे-आम हूं मैं ।
मुँह से कह "राम हूँ मैं" "राम हूँ मैं" "राम हूँ मैं" ॥१६॥

जब तेरा कुछ नहीं इस जिस्म पे सब राम का है ।
राम खुद बन्दा है फिर बन्दा तू कब राम का है ॥
राम के प्यारों से कह हुक्म यह अब राम का है ।
रम रहा राम में जो उसको लक़ब राम का है ॥
न तो आग़ाज़ ही अपना हूं न अन्जाम हूँ मैं ।
मुँहसे कह "राम हूँ मैं", "राम हूँ मैं" "राम हूँ मैं" ॥२०॥

राम को दूसरा कोई नहीं आता है नज़र ।
दूसरा कौन है जुज़ राम, बिचार आठ पहर ॥
राम है ख़ाना बदोश, उसका हर एक दिल में है घर ।
है गुज़र प्रेम भरे दिलमें मेरा देख 'गुहर' ॥
रोशनी बख़्शे जहाँ मेहर लबे-बाम हूँ मैं ।
मुँहसे कह "राम हूँ मैं" "राम हूँ मैं" "राम हूँ मैं" ॥२१॥

एक सच्चाई में है देख वह बरक़ी कुव्वत ।
जिस से बढ़ कर नहीं दुनिया में कोई भी ताक़त ॥
नफ़्से-सरकश को करे ज़ेर जो करके जुरअत ।
रहनुमाई को हो हाज़िर तेरे खुद ही हिम्मत ॥
दिल अगर साफ़ न होगा तो मुसीबत होगी ।
अपने हम-चशमों में भी साफ़ निदामत होगी ॥२२॥

मुझको सहरा में न गुलशन में न गुलज़ार में ढूँढ ।
मुझको मथुरा न हृषीकेश न हरद्वार में ढूँढ ॥
मुझको पर्वत की चटानों पे न कोहसार में ढूँढ ।
मुझको झाड़ी में न बन में न ख़सो-ख़ार में ढूँढ ॥

जुज – सिवा, खाना बदोश – गृह रहित, गुहर – कवि का उपनाम, निदामत – शर्मिन्दगी; खसो – तिनके, खार – कांटे ।

हूँढ ले राम को हाँ मुफ़लिसो-नादारों में।
पायेगा राम को फिरता हुआ नाचारों में ॥२३॥

भूल जा आपको दर्शन की अगर दिल में हो चाह।
तेरे ही आईनये–दिल में हूँ मैं ग़ैरते–माह ॥
क़ल्ब अगर वह्मो-जिहालत से तेरा होगा सियाह।
अपना ही रूप नज़र आयेगा तुझको नहीं, आह ॥
ग़ौर से देख कोई तेरे सिवा अपना है।
खुद तमाशाई है तू और यह जग सुपना है ॥२४॥

ओ३म् मैं राम, मेरा देश मुराली वाला।
ओ३म् मैं माह हूं, तू जिस का बना है हाला ॥
ओ३म् मैं नूर हूँ, तू जिस का बना मतवाला।
ओ३म् मैं रूह हूं, साँचे में तुझे है ढाला ॥
हस्तीओ–इल्म हूं, मसती हूं, नहीं नाम मेरा।
खुदपरस्ती–ओ–खुदाई है फ़क़त काम मेरा ॥२५॥

मैं शहिनशाह हूँ, है जिस्म मेरा हिन्दुस्तान।
विन्ध्याचल है लंगोट और ब्रह्म पुज अस्थान ॥
सर हिमाला है, चरण रास कुमारी है नान।
दोनों बाजू हैं मेरे मशरक़ो मग़रिब पहचान ॥
रूह हूं, आंखें हैं मेरी महो–मेहर ताबाँ।
मैं जिधर चलता हूं, चलता है उधर हिन्दुस्ताँ ॥२६॥

शिव हूं मैं, विष्णु हूं मैं, ब्रह्म हूं, शंकर मैं हूं।
राम और कृष्ण की मूरत मैं हूं, मन्दर मैं हूं ॥
धात् हूं, सोना हूं, पारस हूं मैं, पत्थर मैं हूं।
प्रेम विश्वास मैं, सच्चाई मैं, घर घर मैं हूं ॥

ग़ैरते-माह – चन्द्रमा को लज्जित करने वाला, सियाह—मलीन, क़ल्ब—शरीर, वह्म—भ्रम, जिहालत – अज्ञान, हाला – चन्द्रमा के गिर्द चक्कर।

मैं ही निर्गुण हूं, सगुण मैं हूँ, निराकार मैं हूँ।
प्रेम की जागती मूरत मैं हूँ, साकार मैं हूँ ॥२७॥

मैं ने शेरों को किया प्रेम से बस में, बन में।
मैं ने अर्जुन को फ़न्ने-रज़्म सिखाया रण में ॥
रूह हूँ मैं, कशिशे-दौरये-खूँ हूँ तन में।
ज्ञान में, ध्यान में, घट २ मैं हूँ तन में मन में ॥
नूर ही नूर हूँ प्रकाश है दुनिया में मेरा।
प्रेम के अश्कों का जल बहता है गंगा में मेरा ॥२८॥

मैं ही सूरतगरये-मानी ओ बहज़ाद बना।
मैं ही शागिर्द बना और मैं ही उस्ताद बना ॥
नट बना, बाज़ीगरे-आलमे-ईजाद बना।
लैला मजनूँ बना, शीरीं बना, फ़रहाद बना ॥
मिश्र में मैं ही बना यूसुफ़े-कनआँ सा अज़ीज़।
मैं ने ही दौलते-दुनिया को बनाया है कनीज़ ॥२६॥

मैं ही गोकुल में बसा कृष्ण कन्हैया बनकर।
मैं ही कुञ्जों में फिरा बृज की राधा बनकर ॥
मैं ही नज़रों में खपा हुस्न का जल्वह बनकर,
मैं ही भारत में बहा प्रेम की गंगा बनकर ॥
देश भक्ती का सबक़ सबको पढ़ाया मैं ने।
जो कहा मुँह से वही करके दिखाया मैं ने ॥३०॥

मैं ही मैं एक हूँ सब मुझ से यह हैं बहुतेरे।
वेद और शास्त्र में उपदेश भरे हैं मेरे ॥
राम का तख़्त है आईनये-दिल में तेरे।
राम के प्रेम के हैं देख घटा में डेरे ॥

फन्ने-रज्म – रण-विद्या, कशिश-दौरये-खूँ – रक्त का प्रवाह करने वाली आकर्षण शक्ति, अश्कों – आंसुओं, कनीज – बांदी।

होती आकाश से है प्रेम की वर्षा कैसी।
बहती भारत में है उपदेश की गंगा कैसी ॥३१॥

रश्रद में मेरी गरज, वर्क़ में मेरी ही कड़क।
चाँद में मेरी चमक, तारों में मेरी ही झलक॥
मेरे ही ताबये-अहकाम हैं, सब जिन्नो मलक।
देख तू मुझको हर एक रूपमें गर दिलमें हो शक॥
ब्रह्म हूँ, जीव से माया से भी बाला तर हूँ।
इल्म हूँ, अक़्ल हूँ, विश्वास हूँ, ज़र हूँ, नर हूँ ॥३२॥

मैं ही नाज़िम हूँ, मैं ही नज़्म, मैं ही हूँ मन्ज़ूम।
मैं ही आलिम हूँ, मैं ही इल्म, मैं ही हूँ मालूम॥
मैं ही हाकिम हूँ, मैं ही हुक्म हूँ, मैं ही महकूम।
मैं ही ख़ादिम, मैं ही ख़िदमत हूँ, मैं ही हूँ मख़दूम॥
मैं ही ख़ालिक़, मैं ही मख़लूक़ हूँ, मैं ही हमाओस्त।
मैं ही आशिक़, मैं ही माशूक़ हूँ, मैं ही हमा ओस्त ॥३३॥

आप ही बर्क़ हूँ मैं, आप शरारा मैं हूँ।
आप ही हुस्न मैं हूँ, आप नज़ारा मैं हूँ॥
आप ही चाँद मैं हूँ, आप ही तारा मैं हूँ।
आप ही राम हूँ मैं, आप ही प्यारा मैं हूँ॥
नूर ही नूर हूँ, प्रकाश हूँ दुनिया भर में।
मैं ही हूँ दैर में, बुतख़ाने में, घर में, दर में ॥३४॥

मैं वहाँ हूँ जहाँ बेलौस दिलों में है प्यार।
हूँ वहाँ प्रेम से होती हैं जहाँ आँखें चार॥
मैं वहाँ हूँ, है जहाँ रहिमदिली का इज़हार।
मैं वहाँ हूँ कि जहाँ है हक़ो नाहक़ में विचार॥

जिन्नो मलक—दैत्य और देवता, हमाओस्त—वह सब कुछ है, दैर—मन्दिर, बुतखाने—देवालय, बेलौस—शुद्ध, निरासक्त।

सच्चिदानन्द मैं ही, ब्रह्म मैं ही अविनाशी।
मैं अजर, मैं ही अमर, और मैं ही घट २ बासी ॥३५॥

कर दिया मुझ पे गुहर तूने जो तन मन अर्पण।
हो गईं देख तेरी ज्ञान की आँखें रोशन॥
प्रेम के आँसूओं से धो मेरे हर लहज़ा चरण।
देख जल्वह मेरा देता हूँ तुझे मैं दर्शन॥
दार पर चढ़ के अनलहक़ कहा मन्सूर हुआ।
नाम भक्तों में तेरा आज से मशहूर हुआ ॥३६॥

राम का भक्त है मशहूरे-ज़माँ तुलसीदास।
राम का भक्त है मलकुउल शुअरा कालीदास॥
भक्त भारत में हुआ राम का इक वेदव्यास।
भक्ति जन को है सदा राम पै अपने विश्वास॥
भक्त योरुप में हुए शेक्सपियर मिलटन।
भक्त विलयम हुआ एक क़ैसरे-तख़्ते-जरमन ॥३७॥

राम का है यही उपदेश रहे-रास्त पे चल।
इल्म जितना है तुझे चाहिए उतना ही अमल॥
अपने ही आप पे रख दिल में तू विश्वास अटल।
रख नज़र हाल पे, माज़ी के लिये हाथ न मल॥
सब को तू प्रेम का मतवाला बना सकता है।
कोह हिम्मत से कन उगँली पे उठा सकता है ॥३८॥

फेर दे जा के सबा, राम-ढँडोरा घर घर।
आज से भक्त हुआ राम का भारत में गुहर॥
बिजलियो! कौंद के दिखलादो घटा में मञ्ज़र।
बादलो! दौड़के दहलादो पहाड़ों के जिगर॥

दार—सूली, अनलहक—मैं खुदा हूं, मलकउल शुअरा—कवि-सम्राट, रहे-रास्त—सन्मार्ग, हाल—वर्तमान काल, माजी—भूतकाल, कोह—पहाड, कन—कनिष्ठ।

राम के हाथ में शिव जी का धनुषबाण है आज।
खंड २ इसको करे किस में भला जान है आज ॥३९॥

राम के प्यारों को तू राम का पहुँचा पैग़ाम।
राम का अपने ही भक्तों के है हृदय में मुक़ाम॥
रहता दुनिया में नहीं राम का तालिब नाकाम।
रम रहा राम में जो बस वही पहुंचाँ लबे-बाम॥
चाहते हैं जो मुझे तालिबे-दुनिया होकर।
गिरते पस्ती पे हैं नाकाम तमन्ना होकर ॥४०॥

मैं ही हूं रूह रवाँ "राम कहो" "राम कहो"।
प्यारो ! है ध्यान कहाँ "राम कहो" "राम कहो"॥
है अगर मुँह में जुबाँ "राम कहो" "राम कहो"।
ले के तुम तीरो कमाँ "राम कहो" "राम कहो"॥
मोक्ष पद चाहो तो रम जाओ अभी राम में तुम।
बाज़ी ले जाओगे दुनिया के हर एक काम में तुम ॥४१॥

प्रेम के आँसुओं से सींच के भारत की ज़िमीं।
कहना भारत मेरी माता से है क्यों ग़म में हज़ीं॥
राम ज़िन्दा है नहीं तुझ से जुदा रख यह यक़ीं।
तेरे हर रोम में उल्फ़त है मेरी नक़्शो-नगीं॥
क़ौल है साथ तेरे मुझको है हर लहज़ा ख़्याल।
देखलूँ आँख से जब तक न मैं भारत को बहाल ॥४२॥

हड्डियाँ मेरी हिफ़ाज़त से रखेगी गङ्गा।
नाज़ उठायेगी मेरे बोझ सहेगी गंगा॥
राम के चरणों से अब जल्द बहेगी गंगा।
गोद में लाल लिये राम कहेगी गंगा॥

तालिब—चाहने वाला, पस्ती—अवनति, हज़ीं—व्याकुल।

धर्म का सूरज उदय होगा फिर एक दिन लबे-बाम।
किरणें प्रकाश की फैलायेगा भारत में राम ॥४३॥

मुर्गे-दिल के लिये है तीरे-नज़र राम का प्रेम।
चश्मे-उश्शाक़ में है राम का घर राम का प्रेम॥
रखता है सेहर का हर दिल पै असर राम का प्रेम।
पूछ गंगा की लहरियों से गुहर राम का प्रेम॥
जल समाधी में मग्न दिल की लग्न अब भी है।
धोती गंगा मेरे हर सुबह चरण अब भी है ॥४४॥

(राम)

गह शरारा बन के चमका बर्क़ में।
गह सितारा बनके चमका शर्क़ में॥

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

चश्मे उश्शाक—प्रेमियों के नेत्र, सेहर—जादू, सितारा—ग्रह, शर्क—पूर्व।

॥ ओ३म् ॥

प्रार्थना ।

वह भक्ति मुझको ऐ परमात्मा दे ।
दुई का भेद जो दिल से मिटा दे ॥
मैं सब से पहले पद भक्ति का पाऊँ ।
क़लम लिखने को फिर आगे उठाऊँ ॥
मैं रम कर तुझको अपनाऊँ जहाँ में ।
तुझी में लय मैं होजाऊँ जहाँ में ॥
अगर रखना है अपने नाम की लाज ।
तो बरला मेरे मन की कामना आज ॥
न मैं लज़्ज़ात नफ़सानी में भटकूँ ।
न माया मोह के बन्धन में अटकूँ ॥
न चक्कर में फिरूँ आवा गवन के ।
रहूँ अँधेर बन में शेर बन के ॥
बनूँ मैं आमिले—राहे—हक़ीक़त ।
करूँ तै मनज़िले—राहे—हक़ीक़त ॥
रहूं क़ैदे-अलायक़ से मैं आज़ाद ।
समझ मुझको भी अपना भक्त प्रहलाद ॥
दिये दर्शन धुरू को जिसने बन में ।
वही तू रम रहा है मेरे मन में ॥
तेरा जलवा है हर कौनो*—मकाँ में ।
तू ही तू है ज़मीनों—आसमाँ में ॥
बसा है तू ही तू मेरी नज़र में ।
तेरा प्रकाश है ब्रह्माण्ड भर में ॥

---

* सर्वत्र

तेरा ही नूर है शम्सो क़मर में।
चमन में, नख़्ल में, हर बर्गो-बर में॥
फ़लक पर भूमती काली घटायें।
घटा में *बर्क़ की दिलकश अदायें॥
तू ही तू †जलवा अफ़ज़ा ‡चार सू है।
जिसे समझा हूँ मैं, क्या शक है? तू है॥
हयाओ-हुस्नो-शोख़ी-ओ-अदा में।
जमाले-यारो चश्मे-दिलरुबा में॥
तुझे हर रँग में मसताना पाया।
तुझे हर शमा पर परवाना पाया॥
जहाँ देखो वहाँ है जलवा गर तू।
सनम तू है नज़र तू है, गुहर तू॥
मिले भक्ती तो सब कुछ आ गया हाथ।
मुझे अब चाहिये क्या और हे नाथ॥
हक़ीक़त हो गई मालूम अपनी।
है धोखा हस्तीये-०मौहूम अपनी॥
यह दुनिया क्या है नक़शा ख़्वाब का है।
+हुबाब उठता हुआ एक आब का है॥
यह मक़सद आख़री है ज़िन्दगी का।
लिखूँ जीवन चरित्र इक महर्षी का॥
है जिसका नाम नामो राम तीरथ।
श्री भगवान् स्वामी राम तीरथ॥
सुनाये मौत जब पैग़ाम अपना।
गुहर यों हो बख़ैर अन्जाम अपना॥
नज़र हसरत की दुनिया पर पड़ी हो।
अजल टिकटी लिये सर पर खड़ी हो॥

---

*बिजली †प्रकाशमान् ‡तरफ़, ओर ०भ्रम रूप +बुलबुल।

तमन्ना है कि चरणों का रहे ध्यान।
दमे आख़ीर छूटें जब मेरे प्राण॥
वही हो जल-समाधी का नज़ारा।
तरँगों में हो गङ्गा जल की धारा॥
पद्म आसन हो फ़रशे-सतहये-आब।
चँवर झलती हो हर एक मौज गिरदाब॥
घटायें प्रेम की छाई हुई हों।
हवा में लहरें बल खाई हुई हों॥
हमारा राम प्यारा ज़िन्दा जावेद।
अयाँ बहरे-शफ़क़ में मिस्ले-खुरशेद॥
हो जल धारा में यों आसन जमाये।
मुनी पर्वत ये ज्यूँ धुनी रमाये॥
फ़लक तक गूँजती हो ओ३म् की धुन।
जो धुन सुन सुन के लहरें जल की हों सुन॥
लबे—गंगा गिरोहे—आशिकाँ हो।
अजब कुछ दिलरुबा प्यारा समाँ हो॥
हर एक बेखुद हो मस्ताना अदा में।
सुरीली ओ३म् की दिलकश सदा में॥
तसव्वुर हो वही एक चश्मो-सर में।
हो फिरती मोहिनी मूरत नज़र में॥
कफ़न तन का बने हर द्वार की धूल।
चढ़ें बस राम गंगा में मेरे फूल॥

ज़िन्दा जावेद राम का योबन।

(अर्थात् विलादत, खानदान और बचपन)

है शब की आमद २ रुख़सते-शाम।
छुपा मग़रिब में है मेहरे-गुल अन्दाम॥
दिवाली का है दिन घर २ ख़ुशी है।
दिलों में रूह अफ़ज़ा रोशनी है॥
दिये घी के हैं रौशन मन्दिरों में।
हैं घन्टे बजते टन २ मन्दिरों में॥
चिराग़ों से है घर हर एक गुलज़ार।
मनाया जा रहा है आम त्योहार॥
मुरारी वाला एक छोटा सा है गाऊँ।
निछावर जिसपे हैं बरसाना नन्द गाऊँ॥
यहाँ एक ब्राह्मण के घर बसद प्रेम।
उसी दिन लक्ष्मी पूजन का है नेम॥
है इसका नाम हीरानन्द मशहूर।
गुसाईं ब्राह्मण है चश्मबद दूर॥
हैं उसके घर खुशी के साज़ो-सामाँ।
दिये रौशन हैं रश्के-माह तावाँ॥
खुशी एक और भी है होने वाली।
दोबाला होता है जश्ने-दिवाली॥
न था मालूम अभी कुछ देर का हाल।
चमकता चाँद से भी बढ़ के एक लाल॥
कि बुलाये सरश अज़ होश मन्दी।
दरख़शाँ आफ़ताबे—अर्ज़े—मन्दी।
करेगा इस भरे घर का उजाला।
खुशी का मर्तबा होगा दुबाला॥

ख़बर थी किसको यह नन्हा सा प्यारा।
बनेगा क़ौम की आखों का तारा॥
महीना अद्‌ल का था शुभ घड़ी थी।
अठारा सौ तेहत्तर ईसवी थी॥
ब वक़्ते-शब दिवाली बुध के रोज़।
हुआ तावाँ यह माहे-आलम अफ़रोज़॥
हैं गुज़रे साल तक़रीबन ब्यालीस।
था सम्बत बिक्रमी उन्नीस सौ तीस॥

हुई जब दूसरे दिन सुबह तावाँ।
हुआ खुरशीदे-आलम जल्वा अफ़शाँ॥
गुसांई ख़ान्दां का नूर चमका।
यह प्यारा नाज़िरो मनजूर चमका॥
बनी इशरत-कदह वह पाक भूमी।
बुलाये बाप ने पँडित नजूमी॥
की एक पँडित ने यह पेशनिगोई।
कि है फ़रज़िन्द यह औतार कोई॥
इसे थोड़े ही सिन में ज्ञान होगा।
बड़ा भारी यह विद्यावान् होगा॥
हवा आयेगी जँगल की इसे रास।
करेगा यह भजन तप योग अभ्यास॥
हो ईश्वर दर्शनों की चाह इसको।
हक़ीक़त की मिलेगी थाह इसको॥
मजाज़ी से हक़ीक़ी को पहुँच कर।
सरूरे-ज़ात का तैरे समुन्दर॥
नफ़स को योग से कर लेगा बस में।
फँसेगा यह न दुनिया की हवस में॥

कि दुनियावी सुखों पर मार कर लात।
बनेगा बादशाहे – किशवरे—ज़ात॥
रिफ़ाहे-आम हों अरमान इसके।
हों क़ौम अरु मुल्क पर एहसान इसके॥
करेगा खूब दुनिया भर की यह सैर।
समुन्दर मारफ़त का जायेगा तैर॥
बरस तैंतीस या चालीस के अन्दर।
है डर, ग़रक़ाब हो दरिया में गिर कर॥
अवाइल उम्र ही से था इसे ज्ञान।
हक़ अरु नाहक़ की थी हद दर्जा पहचान॥
अगर ईश्वर है निरगुण अरु निराकार।
तो क्यों पूजें न इस मूरत को साकार॥
यह भारत वर्ष का प्यारा दुलारा।
लगा नाज़ों से पलने माह पारा॥
हुये पैदा हुये पूरे न नौ माह।
कि बिछुड़ा गोद से माता की यह, आह॥
जो अति प्यारी एक उसकी बुआ थी।
जिसे ईश्वर भजन की लालसा थी॥
मुजस्सिम प्रेम की मूरत बनी थी।
कि ईश्वर प्रेम में डूबी हुई थी॥
बना नूरे-नज़र उसका यह फ़रज़न्द।
पला आग़ोश में उसके यह दिलबन्द॥
इसे वह प्रेमो-उलफ़त से खिलाती।
भजन ईश्वर के गा २ कर सुनाती॥
असर ऐसा पड़ा भजनों का दिल पर।
कि बचपन से ही भक्ती ने किया घर।
वुह दिलकश मोहिनी मूरत का नक़शा।
चमकता चाँद सी सूरत का नक़शा॥

हर एक की आँख की पुतली का था तिल।
लुभा लेता था बस हर एक का दिल॥
बरस दो की अभी नौबत न आई।
हुई बचपन में ही उस की सगाई॥
गुसाईं हीरानन्द इसके पिदर की।
हुई कुछ दिन में शादी दूसरी भी॥
हक़ीक़ी माँ को था जैसा यह प्यारा।
बना सौतेली माँ का भी दुलारा॥
हुआ जब ख़त्म उसको तीसरा साल।
बिठाया बाप ने मकतब में फ़िल हाल॥
था बचपन से ही ज़हिन इसका खुदादाद।
कि था मद्दाह हर एक उसका उस्ताद॥
बढ़ा इल्मो-अदब का इस क़दर शौक़।
कि हमचश्मों में सब से ले गया फ़ौक़॥
थे करते प्यार सब उस्ताद उसको।
सबक़ रहता था अज़बर याद उसको॥
कथा का शौक़ था बचपन से उसको।
भजन थे हरि के भाते मन से उसको॥
हुई तालीम जब ख़त्म इबतदाई।
तो नौबत मदरसे जाने की आई॥
उसी क़सबे में था सरकारी अस्कूल।
वहाँ जाता था पढ़ने हस्ब मामूल॥
किया तहसीले-इल्म इस शौक़ दिल से।
किये तै जल्द छोटे छोटे दरजे॥
न खोया वक़्त बेकार अपना एक पल।
रहा नम्बर हर एक दरजे में अव्वल॥

वज़ीफ़े भी किये हासिल कई बार।
मिले सार्टीफ़िकेट भी उसको दो चार॥
गरज़ करता गया ज्यों सिन तरक्क़ी।
की इस नौ उम्र ने दिन दिन तरक्क़ी॥
कि थोड़े ही दिनों में करके अभ्यास।
किया वर्नाक्यूलर उर्दू मिडिल पास॥
जो पहुँचा दस बरस के सिन में यह माह।
पिता ने इसके इसका कर दिया ब्याह॥
अभी बच्चे को कब इतनी समझ थी।
कि पैरों में पड़ी जाती हैं बेड़ी॥
हुआ बारह बरस में कुछ समझदार।
तो बोला बाप से एक रोज़ नाचार॥
नहीं यह हिन्दूओं में रस्म अच्छी।
कि कर देते हैं बचपन से ही शादी॥
तरक़्क़ी में रुकावट है जो कुछ भी।
तो बस यह कमसिनी ही की है शादी॥
यह नौ दस साल का नौ उम्र बच्चा।
हक़ और नाहक़ को इतना जानता था॥
कि खुद कहने लगा इक दिन पिता से।
पिता जी मदरसे के मौलवी ने॥
पढ़ाने में है की मेहनत मेरे साथ।
है उसतादाना की शफ़क़त मेरे साथ॥
यह मेरी राय में है मोलवी को।
बँधी है भैसँ जो घर पर वह दे दो॥
किताबों में पढ़ा है मैं ने अकसर।
कि हक़ उस्ताद का है सब से बढ़ कर॥

दिमाग़ उस का वह मख़ज़न अ़क़्ल का था।
नमूना साफ़ रोशन अ़क़्ल का था॥
मिनट एक एक था उस का बेश क़ीमत।
वह था मुतलाशिये—राहे—हक़ीक़त॥
शबो-रोज़ उसने की मेहनत लगातार।
यह आखिर पड़ गया एक बार बीमार॥
न मेहनत सह सकी जब तन्दुरुस्ती।
तो बी ए में हुई नाकामयाबी॥
मगर मेहनत से खुद हिम्मत न हारा।
हुआ दरजे में पास आख़िर दुबारा॥
वज़ीफ़े पाये दो फिर पास होकर।
रहा बी ए में भी अव्वल ही नम्बर॥
कि हल करना रियाज़ी के सवालात।
नज़र में उस के एक अदना सी थी बात॥
दिली ख़्वाहिश रहा करती थी अकसर।
बनूँ दुनिया का टीचर या प्रीचर॥
सो ईश्वर लाया बर ख़्वाहिश यह उस की।
बना दुनिया का वह टीचर हक़ीक़ी॥
रियाज़ी सीखने इस से खुशी से।
एम ए तक के थे स्टूडेन्ट आते॥
यह भक्त ईश्वर का प्यारा राम तीरथ।
हर एक नज़रों का तारा राम तीरथ॥
था इल्म अरु फ़न का कुछ इस दर्जा शायक़।
कि पढ़ लिख कर हुआ हद दर्जा लायक़॥
रियाज़ी के प्रोफ़ेसर ने खुश हो।
घड़ी मये चेन दी इनआम इस को॥

थे नामी डाक्टर एक बाबू रघुनाथ।
उन्हों ने राम तीरथ का दिया साथ॥
पढ़ाने में एम ए तक की वह इमदाद।
कि एहसाँ रह गये उन के सदा याद॥
हुआ था इत्तफ़ाक़ एक बार ऐसा।
यह पाता था जो माहाना वज़ीफ़ा॥
न उस में से बचा कुछ पास उस के।
लिये क़र्ज़ उसने दस रुपये किसी से॥
अदाई की अजब सूरत थी उन के।
यह हर माह उस को दस देता था रुपये॥
है अहसाँ के इवज़ यह फ़र्ज़ इन्साँ।
कि मोहसिन का कभी भूले न एहसाँ॥
थी जैसी कुछ कि क़ब्ल अज़ इमतहाँ आस।
एम ए भी कामयाबी से किया पास॥
रियाज़ी के मिशन कालिज में खुद ही।
प्रोफ़ेसर रहे आप आनरेरी॥
हैं लिखते डाक्टर रघुनाथ को आप।
यह सब है आप ही का पुण्य पूरताप॥
हुई मुझ पर दया परमात्मा की।
कि हासिल हो गई एम ए की डिगरी॥
था गो सख़्त इमतहाँ, पर्चे थे मुशकिल।
मगर इमदाद थी ईश्वर की शामिल॥
बुज़ुर्गों की दुआ से हो गया पास।
मिला मेहनत का फल पूरी हुई आस॥
इसी * असना में गुज़रा वाक़या एक।
ज़ि बस †जाँकाह था यह हादसा एक॥

---

* काल समय। † केवल जान लेने वाला

वह तीरथ देवी जो इस की बहिन थी।
जिसे हद दर्जा इस की मामता थी॥
हुई एक दिन राशी उस को जो तारी।
तो वह बैकुण्ठ को एक दम सिधारी॥
जुदाई का बहिन के जब सुना हाल।
न पूछो राम का जो कुछ हुआ हाल॥
दिल इसका गो कि *मुतहम्मिल बड़ा था।
मगर सदमा यह †फुरक़त का कड़ा था॥
उमँड आये जो ‡अश्क आखों से यक बार।
कलेजे को लिया खुद थाम नाचार॥
जो खेला बहिन से बचपन में था राम।
बहिन का लाड़ला तन मन से था राम॥
भर आया जोशे-उलफ़त से जो दिल आह।
तो रख ली सब्र की सीने पे सिल-आह॥
किया सदमा बसद हसरत गवारा।
नहीं था सब्र के जुज़ कोई चारा॥
कथा सुन्ने का बचपन से जो था नेम।
भरा हर रोम में ईश्वर का था प्रेम॥
है नन्द गोपाल का मंदिर जो मशहूर।
कथा सुनने को जाते हस्ब दसतूर॥
है ज़िक्र एक दिन कथा सुनते ही सुनते।
लगे आप यक बयक बेतौर रोने।
हाँ बच्चे जिस तरह रोते बिलक कर।
थे रुखसारों पे अश्क आते ढलक कर॥
किया रोने को सब ने मना हर चन्द।
नहीं रोना हुआ पर आप का बन्द॥

* सहन शील। † जुदाई। ‡ अश्रु।

न काम आया दिलासा अरु तशफ़्फ़ी।
असर दिलपर गई कर प्रेम भक्ती॥
नहीं छुपता है जब इश्क़े-मजाज़ी।
तो छुप सकता है कब इश्क़े-हक़ीक़ी॥
एम ए की राम डिगरी करके हासिल।
हुए भक्ती की जानिब आप मायल॥
स्वाभाविक आप में ईश्वर के गुण थे।
कि कुदरत की तरफ़ से कारकुन थे॥
मगर माया का पर्दा दरमियाँ था।
मुजस्सिम ब्रह्म का जल्वा निहाँ‡ था॥
भजन में मह्व इतने हो गये थे।
कि अपने तन बदन से खो गये थे॥
तसव्वुर कृष्ण का ऐसा बँधा था।
स्वरूप अपना भी खुद भूला हुआ था॥
तमन्ना थी कि हों ईश्वर के दर्शन।
यह तन मन धन करूं सब कृष्ण अर्पण॥
घटा को देख कर आँसू बहा कर।
यह कह उठते थे बेताबाना अक्सर॥
मुझे कब होंगे दर्शन कृष्ण प्यारे।
बनोगे कब मेरी आंखों के तारे॥
नहीं अब और कोई जुस्तजू है।
फ़क़त दर्शन की मुझ को आरज़ू है॥
है ज़िक्र एक रोज़ का रावी किनारे।
थे मह्व ईश्वर भजन में आप प्यारे॥
कि कोइल कूक उठी इतने में नागाह।
पड़े चौंक आप भरकर सर्द एक आह॥

‡ छिपा हुआ।

कहा कोइल से फिर तान एक सुना दे।
मुझे उस बँसी वाले का पता दे॥
सदा मुरली की है जैसी तरबखेज़।
है तेरी कूक भी दिलकश दिलावेज़॥
बता दे कृष्ण का देखा है मुखड़ा।
यक़ीनन सांवला उसका है मुखड़ा॥
कभी कहते थे *अश्क आखों में भरकर।
दया कब कीजियेगा कृष्ण! मुझ पर॥
न होंगे आपके क्या मुझको †दीदार।
हूँ मैं ऐसा भी क्या पापी गुनहगार॥
सनातन धर्म के जल्सों में अकसर।
खड़े होते थे जब देने को लेक्चर॥
हक़ीक़ी प्रेम के दिलकश असर से।
थे गँगा जल बहाते चश्मे-तर से॥
जो माहाना मिला करती थी तनख्वाह।
क़रीबन सर्फ़ होजाती थी हर माह॥
वह अपने क़ौल के ऐसे धनी थे।
गुलाम इनके थे सब जितने ‡ग़नी थे॥
ॐ! ॐ!! ॐ!!!

---

* अश्रु। † दर्शन। ‡ धनी लोग।

यज्ञ का भावार्थ।

जिस समय ब्रह्मा की पवित्र यज्ञ-भूमि पुष्कर में राम का निवास था, उस समय उस को एक पत्र मिला। जिस में यह पूछा गया था कि पुरातन यज्ञादि विधि को पुनः प्रचार करके राष्ट्रीय एकता स्थापित करने में राम का क्या मत है? उस पत्र के उत्तर में निम्न लिखित पंक्तियां बह निकलीं:—

The highest virtue has no name.
The greatest pureness seems but shame.
True wisdom seems the least secure.
Inherent goodness seems most strange.
What most endures is changeless change.
The loudest voice was never heard.
The biggest thing no form doth take.

सर्वोत्तम गुण का नाम नहीं होता।
सर्वोत्तम पवित्रता लज्जा मात्र प्रतीत होती है।
सच्ची बुद्धिमता (प्रज्ञा) बहुत कम निशंक प्रतीत होती है।
स्वाभाविक श्रेष्ठता अति अस्वाभाविक जान पड़ती है।
अपरिवर्तन शील परिवर्तन अत्यन्त स्थाई होता है।
अत्यन्त ऊँचा शब्द कभी सुना नहीं जाता।
अत्यन्त विशाल वस्तु कोई रूप धारण नहीं करती।

(अर्थात् सापेक्षक वस्तु का गुण, रूप इत्यादिक सब देखने में आ सकता है और परिवर्तन-शील होता है, केवल निरपेक्षक, अत्यन्त गुण, पवित्रता, प्रज्ञा और श्रेष्ठता-युक्त वस्तु कहने

सुनने वा देखने से परे और विकार रहित होती है, अर्थात् अनुभव गम्य होती है, इन्द्रियगोचर नहीं।) कविता में ऐसे

सर्वोत्तम गुण शील जगत में नाम हीन है।
पावन परम प्रसङ्ग लाज का पात्र दीन है॥
होता नहीं विश्वास बुद्धिमत्ता सच्ची का।
है जो उत्तम स्वतः, अचम्भा लगे उसी का॥
परिवर्तन ही अधिक ठहरता है अविकारी।
निराकार गुरु वस्तु, रही अश्रुत ध्वनि भारी॥

यदि सूर्य बम्बई के आम के वृक्षों से कहने लगे कि मैंने जो अपना प्रकाश और ऊष्णता हिमालय के भोज पत्र और देवदार के वृक्षों को प्रदान की है, वह मैं तुम्हें नहीं दूंगा, और तुम्हें चाहिये कि जो शक्ति और कृपा मैंने उन पहाड़ी वृक्षों पर प्रगट की है, उसी से तुम फूलते फलते और बढ़ते रहो, तब तो वे आम के वृक्ष थोड़े ही काल में अन्तर्ध्यान् हो जाएँगे। न तो बाटिका के सेबों पर पड़े हुए सूर्य के प्रकाश से कमल जीवित रह सकते हैं, और न बुद्ध भगवान, ईसामसीह अथवा मोहम्मद के अनुभव से शेक्स पीयर, निऊटन या स्पेन्सर को शांति मिल सकती है। इस लिए हमको अपने प्रश्न स्वयं हल करना चाहिये, और पुरातन काल के माननीय ऋषियों और दार्शनिकों की दृष्टि से देखना छोड़ कर स्वयं अपनी आँखों से देखना चाहिये।

प्रत्येक स्मृति ऐसा कहने को उद्यत होती है कि "पूर्व काल में हमारा मत ऐसा था, परन्तु इसके विषय में आज तुम्हारा क्या विचार है?" प्रत्येक संस्था एक सिक्का है, जिस पर हम अपनी ही मोहर-छाप लगाते हैं। कुछ काल में उस सिक्के के अंक मिट जाते हैं और वह पहचाना नहीं जाता, इस लिए उसे पुनः टकसाल में जाना चाहिये। प्रकृति

को इस बात में आनन्द आता है कि वह अपने कलमों (crystal अर्थात संसार के पदार्थों) को बनाती है, बिगाड़ती है और फिर उनको नया आकार देती है। अपरिवर्तन शील परिवर्तन ही जीवन की मुख्य आवश्यकता है, अर्थात् निरन्तर हेर फेर ही जीवन की आवश्यक कुंजी है।

ऐसे मनुष्य से अतिरिक्त किसी अन्य की अवस्था अधिक करुणा के योग्य नहीं है जिसका भविष्य तो उसकी दृष्टि से विमुख हो और भूतकाल सर्वदा उसके सन्मुख उपस्थित हो। निम्न लिखित विवेचना की प्रत्येक बात गीता, मनुस्मृति और श्रुति के परमाणों से पुष्ट की जा सकती है, परन्तु ऐसा जान बूझकर नहीं किया जाता है क्योंकि ऐसा करने से और २ विषय छिड़ जावेंगे और मुख्य बात रह जाएगी। अर्थात् दूसरे पक्ष के प्रमाण भी दिये जाएंगे और शब्द की सूखी हड्डियां चबानी शुरू होएंगी, अर्थात् शब्दवाद विषय उपस्थित हो जायगा। और फिर इससे शिक्षा की हानिकारक पद्धति को उत्तेजना देने का पाप भोगना पड़ेगा; अर्थात् तथ्य या स्थिति के अध्ययन की अपेक्षा ग्रन्थ का अध्ययन अधिक महत्व पूर्ण समझा जायगा।

महानुभाव शंकराचार्य्य की बड़ी भारी भूल यह हुई कि उन्होंने अपने प्रकाश (अनुभव) को डलिया के नीचे अवश्य ढांक दिया। जब उन्हें स्वानुभव से सत्य प्राप्त हुआ था तो क्यों उन्हों ने पुराने प्रमाणों को तोड़ मरोड़ कर सत्य निकालने का प्रयत्न करने में अपना समय व्यर्थ नष्ट किया जब कि स्वानुभव से भी अधिक विश्वासनीय कोई प्रमाण नहीं हो सकता? उनके पश्चात जो दूसरे आए (रामानुज, माधव इत्यादि), उन्हों ने भी उन्हीं शब्दों को लिया, और उन्हीं मूल ग्रन्थों से अपने मन माने अर्थ ज़बरदस्ती

से निकाले। इस सदिच्छा-पूर्ण प्रयत्न से सत्य की गति प्रबल होने के बदले उलटी रुक गई। स्पष्ट शब्दों में इसका अर्थ यह है, कि भारत के वर्तमान दुःखों का कारण हमारा सृष्टि-क्रम-विरुद्ध आचरण और जीवित आत्मदेव को मृत-ग्रन्थ रूपी पिशाच का दास बनाना ही है। श्रुति माता की ऐसी दुर्दशा हुई है कि एक पुत्र उसके केशों को एक तरफ़ खींचता है, दूसरा दूसरी तरफ खींचता है, और तीसरा उसकी चोटी पकड़ कर तीसरी ही ओर खींच रहा है। इस प्रकार प्रत्येक जन श्रुति के नाम से अपने मन माने मत का प्रचार करना चाहता है और इस सब का परिणाम यह होता है कि आचरण की सत्यता भ्रष्ट होती है। हे प्राचीन भारत के ऋषियों और आचार्य्यों! क्या तुम्हारे वंशज इस अधोगति को पहुँच गए हैं कि वे अपनी वर्तमान आवश्यकताओं और आज कल की स्थिति के प्रश्नों को उस भाषा की व्याकरण के नियमों से तै करेंगे जो इस समय बोली भी नहीं जाती?

प्रियवरो! नियम और संस्थाएं मनुष्य के लिए हैं, मनुष्य नियमों और संस्थाओं के लिए नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि भाष्य के द्वारा भविष्यकाल भूत काल से दृढ़ता पूर्वक मिला हुआ है। यह विचार कितना उत्तम है और किस उत्तम रीति से वर्णन किया गया है! परन्तु क्या पुराने गुदड़ों (वस्त्रों) में हम पहिले ही बहुत से सीवन और पैबन्द नहीं लगा चुके हैं? सत्य को (परस्पर) समझौते (Compromise) की आवश्यकता नहीं है। सम्पूर्ण पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करे, परन्तु सूर्य को पृथ्वी की परिक्रमा करने की आवश्यकता नहीं। भूत और भविष्य का मेल जोल बनाए रखने के अभिप्राय से क्या विज्ञान के

आधुनिक अविष्कारों को ईसाइयों की बाइबल किंवा दूसरे धर्म ग्रन्थों (जैसे भाष्य) के साथ लटकाने की आवश्यकता है? ईश्वर प्रणीत धर्म ग्रन्थों को स्वयं बोलने दो। इतनी सज्जनता ईश्वर में अवश्य है कि वह अपने बचनों को व्यंग रहित रक्खे और ऐसा न करे कि संसार के लोग सहस्रों वर्ष तक एक से दूसरी भूल वा भ्रम में गोते खाते रहें, और जब तक कोई स्वयं बना हुआ ईश्वर दूत या टीकाकार आकर उन के अर्थ न बतावे तब तक समझें ही नहीं। यह टीकाकार तथा स्वयं बने हुए ईश्वर दूत पक्षपात रहित न्यायाधीश होने का तो दावा करते हैं, परन्तु वकीलों की धूर्तता-पूर्ण कुटिलता का व्यवहार करते हैं। क्या प्रमाण सत्य की स्थापना कर सकता है? क्या सूर्य्य दिखाने के लिए दीपक की आवश्यकता है? क्या गणित शास्त्र के एक सरल सिद्धान्त की इससे अधिक पुष्टि हो जाती है यदि ईसा, मुहम्मद, बुद्ध ज़रदुश्त (zoroaster) अथवा वेद उसकी साक्षी दें? रसायन-शास्त्र के तत्त्वों का अनुभव हम को प्रत्यक्ष प्रयोगों से होता है। इन का विश्वास मात्र मस्तिष्क में भर देना तो मानों बुद्धि के संहार का पाप अपने माथे पर मढ़ना है। किसी वृतान्त को और त्रिकाल बाधित सत्य को एक ही मत समझो। किसी विशेष वृतान्त को हम दूसरे के कहने से अर्थात् प्रमाण से मान सकते हैं, परन्तु सत्य स्वतः अनुभव से मालूम होना चाहिये। क्या वेदान्त को वाद-विवाद (Argumentation) और प्रमाण से सिद्ध करने की आवश्यकता है? क्यों? वेदान्त के सिद्धान्त को उचित रूप से वर्णन करना ही अखंडनीय प्रमाण है। सौन्दर्य्य को आकर्षी बनाने के लिए किसी बाहरी सिफारिश की आवश्यकता नहीं है।

मोहनी सुन्दरियों के गान गाकर, प्रिय भाषण करके, अज्ञान रूपी निद्रा को बनाए रखने के लिए लोरियां गाकर और जन समूह अथवा अज्ञानी मनुष्यों की लल्लो-पत्तो करके अगणित अनुयाइयों की मंडली जमा कर लेना कोई कठिन काम नहीं है। परन्तु सत्य ही चिर स्थाई (वस्तु मात्र) है, और जितने चराचर पदार्थ हैं वे सब मिथ्या (अवस्तु-मात्र) हैं। जो मनुष्य केवल देखने मात्र रूपों पर सत्य को न्योछावर करदेता है, उसे धिक्कार है। सत्य को स्वयं अपनी इच्छा से विकसित होने दो। सत्य रूपी सूर्य को यह भली भाँति विदित है कि उस को उदय किस प्रकार होना चाहिये। घोर निद्रा में सोये हुए लोगों को हिला कर जगाने के लिए सत्य को अपने (ज्ञान रूपी) अग्निवाणों (बम के गोलों) के रागों से घनघोर गर्जना करने दो। मैं सत्य हूं, मैं देह (रूप) की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए आत्मघात करने को कभी भी तैय्यार नहीं हूंगा।

अब यज्ञ के विषय को लेकर हम स्वतन्त्रता से और पक्षपात रहित होकर उस के भिन्न २ पहलुओं (पक्षों) पर विचार करेंगे।

जैसा कि साधारण रीति से समझा जाता है, हवन यज्ञ का मुख्य और आवश्यक अंग है। सब से प्रसिद्ध दलील जो इस के वर्तमान अनुयाइयों की जिह्वा पर रहती है वह यह है कि हवन से वायु शुद्ध होती है, और उस से सुगन्ध पैदा होती है। यह एक बडी खेंचा-तानी की कल्पना है। अन्य उत्तेजक पदार्थोंकी सुगंधि,अथवा शारीरिक विज्ञान के सफ़ेद झूंठ के समान सुगंध भी सूंघने में अच्छी मालूम होती है और क्षण भर के लिए मग्न कर देती है, परन्तु उस के साथ ही प्रतिक्रिया (Reaction) रूप से उत्साह को मन्द वा

शिथिल करदेती है। उत्तेजक पदार्थ हमारी भावी शक्ति के भण्डार से कुछ शक्ति उधार लेने में सहायता देते हैं, परन्तु यह ऋण सूद-दर-सूद के हिसाब से उधार मिलता है और ऋण चुकाने की कभी नौबत ही नहीं आती।

परन्तु हवन से सुगन्ध तो बहुत थोड़ी निकलती है। उस का विशेष भाग कार्बन डाइआक्साइड (Carbon dioxide) होजाता है जो वस्तुतः बडा हानि कारक होता है।

एक समय ऐसा था जब कि भारत वर्ष में मनुष्य बसती की अपेक्षा जंगल अधिक थे। उस समय घी और अन्य पिष्ट-मय पदार्थों (Hydro carbonates) के जलाने से वनस्पतियों के उगने में शायद कुछ थोड़ी बहुत सहायता होती हो क्योंकि इससे कार्बन-डाइ-आक्साइड (जो वृक्षों का आहार है) पैदा होता है। परन्तु आज कल स्थिति बिल्कुल उल्टी है। एक तो अब वे जंगल ही नहीं रहे और दूसरे जन-संख्या की भी निःसीम वृद्धि होगई है; इसका परिणाम यह हुआ है कि वायु में कार्बन-डाइ-आक्साइड अधिक बढ़ गया है। उसी से लोग आलसी बन गए हैं। इन दिनों भारत-वर्ष को प्राण वायु (Oxygen) और तीव्र प्राण–वायु (Ozone) की विशेष आवश्यकता है, न कि कार्बन डाइ-आक्साइड की।

यह बात याद रखना चाहिये कि हवन करने का और लोगों को भोजन कराने का रासायनिक परिणाम वायु पर एक ही होता है। तब अमूल्य घृत को कृत्रिम अग्नि के मुँह में झोंकने के बदले सूखी रोटी के टुकड़े उस जठराग्नि में क्यों नहीं डालते जो लाखों भूखे परन्तु साक्षात नारायण स्वरूप गरीब लोगों के अस्थि व मांस को खाये जा रही है? इस प्रकार के हवन की आज कल भारत में विशेष आवश्यकता है।

फिर ज़रा यह देखिये कि यदि आप ने एक दिन हज़ार

दो हज़ार आदमियों को भोजन करा भी दिया तो इससे लाभ क्या होगा। इस प्रकार विना बिचारे दान करने से तो केवल भले मानस भिखारियों की ही संख्या बढ़ती है। यह सारा दुःख भारतवर्ष में क्यों है? विना बिचारे दान देना। अर्थात् पात्र कुपात्र का विचार किये बग़ैर दान करना ही भारतवर्ष की सम्पूर्ण दरिद्रता का मूल कारण है। एक फ्रेञ्च ग्रन्थकार का कथन है कि दान (खैरात) जितना दुःख दूर करता है उससे आधा उत्पन्न कर देता है। और जिस नवीन दुःख को उसने स्वयं पैदा किया होता है, उसके अर्ध भाग को भी वह निवारण नहीं कर सकता। दान का निर्णय उसके परिणाम से करना चाहिये न कि उस के उद्देश्य से। वह दुर्बल मन वाला यात्री जो किसी ज़िद्दी व आलसी भिखारी को एक आध पैसा दे देता है चाहे वह अपनी मन समझौती कर ले कि उसने परलोक में अपने जीव की रक्षा का इन्तिज़ाम कर लिया है। यह बात ठीक हो या न हो, परन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि इस लोक में उसने अपने राष्ट्र के नाश करने का उपाय अवश्य किया है।

हमारे सामने मुख्य प्रश्न यह है कि हमें ठीक तरह का यज्ञ करना चाहिये—अर्थात् दीन और अनाथ लोगों की सेवा और रक्षा करना चाहिये। और इस कार्य्य को इस रीति से करना चाहिये कि हमारे मूल उद्देश्य का नाश न हो। यदि आप किसी मनुष्य को कोई सब से बड़ा दान दे सकते हैं तो वह केवल विद्या-दान है। आज आप किसी मनुष्य को भोजन करा दीजिये, कल फिर उसे वैसी ही क्षुदा लगेगी। परन्तु यदि इसके बदले आपने उसे कोई धन्धा सिखा दिया, तो आप ने उसको जन्म भर रोटी कमा खाने के योग्य बना दिया। और जो विद्या उसे सिखाई जाय वह ऐसी हो कि

जिससे उस मनुष्य का जीवन वास्तविक रूप से सार्थक हो जाय। आज कल जूता बनाने का काम सीख लेना अति उत्तम है।

जो लोग तुम से धन, ज्ञान, शक्ति अथवा पद में छोटे हों, उनके साथ तुम्हें वैसी ही सहानुभूति प्रगट करना चाहिये और उन पर वैसी ही सहायता करनी चाहिये जैसी कि लोग अपने बच्चों से करते हैं। और प्रतिफल की आशा न करके इस मातृ पद के परम सुख को भोगना चाहिये कि जो सुख माता को आध्यात्मिक भोजन, अर्थात् उत्साह, ज्ञान और भक्ति से अपने बच्चों की सेवा करने के अधिकार में प्राप्त होता है। यही सब से बड़ा निष्काम यज्ञ है।

किसी अन्य अवसर पर हम भारतवर्ष के कर्मकांड का इतिहास सविस्तर देंगे। भारतवर्ष के प्राचीन समय में जबकि समाज आजकल की तरह बनावटी नहीं हो गया था और खान पान, वस्त्र, घरद्वार इत्यादि की रीति भाँति की ओर लोगों का इतना ध्यान न था और वर्तमान कश्मीर के भागों के अनुसार फलफूल के वृक्ष सर्वत्र अधिकता से उपस्थित थे, और अमेरिका के वर्तमान मूल निवासियों के अनुसार भारतवर्ष के लोगों को कपड़े की विशेष आवश्यकता न थी, जबकि छायादार वृक्ष और पहाड़ों की गुफायें लोगों को घर का काम देती थीं; उस समय लोगों की संचित मानसिक और शारीरिक शक्ति के लिये कोई दूसरा मार्ग न होने के कारण वह शक्ति देवताओं से व्यवहार करने में अर्थात् सब प्रकार के यज्ञ करने में लगाई जाने लगी। पहले यह सब यज्ञ देवताओं से ठीक २ और सच्चा व्यवहार मात्र थे। उन में याचना, खुशामद, दब्बू, अपने को तुच्छ समझना वा लानत देना, दास-वृति और 'भिक्षां देहि' का नाम तक न

था। पूर्वजों के मतानुसार दैवी शक्तियों से बराबरी के नाते के साथ व्यवहार रूप से वे यज्ञ किये जाते थे। यदि उन यज्ञों को पंच महाभूतों के देवताओं के साथ की हुई दुकानदारी कहें तो अयुक्त न होगा। परन्तु उनमें आजकल का सा मारवाड़ी ढँग बिलकुल न था, यद्यपि उन में पारस्परिक लेन देन और सच्ची बनिक वृति अवश्य थी।

ये सम्पूर्ण यज्ञ "अगर" पर अवलंबित थे। अगर तुम्हें वृष्टि चाहिये तो अमुक यज्ञ करो, अगर तुम्हें सन्तान चाहिये तो अमुक यज्ञ करो, अगर तुम्हें जय लाभ करना है तो दूसरे प्रकार का यज्ञ करो, और अगर तुम्हें धन चाहिये तो तीसरी तरह का यज्ञ करो इत्यादि, इत्यादि।

इस रीति से ये सब यज्ञ स्वयं हमारी इच्छा पर अवलंबित होने से "अगर" पर निर्भर थे और इसलिये ये सब पहले आवश्यक न थे वरन ऐच्छिक (हमारी इच्छा के अनुसार) थे। परन्तु धीरे २ उनकी पृथा चल गई और उन्हों ने लोकाचार का रूप धारण कर लिया। जिस से स्वयं हम ने इन को अपना कर्तव्य बना लिया।

भारत वर्ष के इतिहास में आगे चलकर हम यह देखते हैं कि यज्ञों का स्थान पौराणिक कर्मकांड ने ले लिया। हम यह भी देखते हैं कि महाभारत के आपस के युद्ध ने देश में बड़ा भारी हेर फेर पैदा कर दिया था। धार्मिक और राजकीय परिवर्तनों (revolutions) ने राष्ट्र की सम्पूर्ण व्यवस्था को उलट पलट कर दिया था। प्राचीन देवताओं के प्रति भावना बिलकुल बदल गई थी। अब लोगों की व्यावहारिक आवश्यकतायें अधिक बढ़ गई थीं। लोगों के पास इतना समय न था कि एक यज्ञ करने में वे अब महीनों या वर्षों बितावें। प्राचीन यज्ञ इत्यादि की जगह पौराणिक कर्मकांड के आजाने

का यही मुख्य कारण बताया जाता है। इससे हमें यह प्रमाण मिलता है कि अपने धर्म को तनिक भी हानि पहुंचाये बिना, और समय की आवश्यकतानुसार हम अपने कर्मकांड में आवश्यकीय परिवर्तन कर सकते हैं।

राम यह कहे बिना नहीं रह सकता कि स्मृति (Laws) रीति रवाज, आचार वा विचार, विधि, संस्कार (अर्थात् सम्पूर्ण कर्मकांड) समयानुसार केवल बदलते ही नहीं रहे हैं, परन्तु एक ही देश के भिन्न २ भागों में वे भिन्न २ रहे हैं। किसी समाज का जीवन उसकी लगातार उन्नति, बाढ़ और उचित परिवर्तन ही पर निर्भर करता है। प्रकृति का यह एक अटल सिद्धांत है कि "परिवर्तन करो, नहीं तो मरो" अर्थात् यदि संसार में तुम्हें जीवित रहना है तो समयानुसार परिवर्तन अवश्य करो।

प्रेसीडेन्ट डाक्टर डेविड स्टार जोर्दन (President Dr. David starr Jordan) जोकि आधुनिक विकाशवादियों में एक सुप्रसिद्ध मनुष्य है, कहता है कि "सामाजिक विकाश के सम्बन्ध में चर्चा करते समय हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि समाज की वही पूर्ण अवस्था हमें सदैव अपूर्ण प्रतीत होती है, क्योंकि जो समाज विशेष उन्नत होता है वह गत्यात्मक (Dynamic) होता है और जो समाज स्थित्यात्मक (Static) होता है उसकी बाढ़ रुकी हुई होती है। अत्यन्त उन्नत अवयव वा चेतन पदार्थ (Organisms) बहुत ही अपूर्ण प्रतीत होता है।" स्थिति के साथ पूर्णतया मेल बनाये रखने के लिये हम को हमेशा परिवर्तन करना ही पड़ता है, क्योंकि स्थिति सदैव बदला ही करती है। ऐसा स्थित्यात्मक मनोराज्य जो लगातार हज़ारों वर्ष तक बना रहे, जिस में कलह और परिवर्तन का

लेश तक न रहे, जिसमें सब लोग सुखी और सुरक्षित रहें, हमारे मनुष्य और जगत के ज्ञान में तो कहीं दिखाई नहीं पड़ता।

इस लिए अपनी परिस्थिति के अनुसार हम को अपना कर्मकांड अवश्य बदलना चाहिये। वैदिक काल के ऋषियों की आवश्यकताओं से हमारी आवश्यकतायें बिलकुल भिन्न हैं। वे सब "अगर" (ifs) जिन पर सम्पूर्ण कर्मकांड अवलम्बित है, बिलकुल बदल गये हैं। आज कल हमारे सामने यह प्रश्न नहीं है कि "यदि तुम्हें गाय भैंसों की ज़रूरत है तो इन्द्र देव को हव्य भेंट करो" अथवा "यदि तुम्हें अधिक सन्तान की आवश्यकता है तो प्रजापति को प्रसन्न करो" या इसी तरह की और बातें। परन्तु आज कल के कर्मकांड के प्रश्न ने यह स्वरूप धारण किया है कि "यदि प्रति दिन उद्योग और धन्धे बढ़ाने वाली शताब्दी में तुम जीवित रहना चाहते हो और तुम्हारी यह इच्छा नहीं है कि राजक्षयक्षय रोग से तुम मर जाओ, तो विद्युतरूपी मातरिश्वा पर अपना अधिकार जमा लो, भापरूपी वरुण को अपना दास बनालो कृषि शास्त्ररूपी कुवेर से खूब स्नेह बढ़ा लो। और इन देवताओं से तुम्हारा परिचय कराने वाले पुरोहित, वे शिल्पज्ञ व विज्ञानवेता हैं जो इन विद्याओं को पढ़ाते हैं।

विधर्मगामी भाषा के प्रयोग करने का अपराध राम पर न लगाइये। इस संसार में हर एक वस्तु परिवर्तनशील है। देश का स्वरूप विलकुल बदल गया है, राजसत्ता बदल गई है, भाषा बदल गई है, लोगों का रंग (वर्ण) भी बदल गया है, तब फिर वैदिक समय के देवता ही क्यों बैठे हुये स्वर्ग में अपने पालने में झूला करें और समयानुकूल उन्नति क्यों न करें? क्यों न वे नीचे उतर कर हम लोगों

के साथ स्वतंत्रता से मिलें ताकि सब लोग उन्हें भली भाँति जान जायें ?

प्रियवर देश बान्धवो ! राम से यह कदापि नहीं हो सकता कि सूर्य्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल, तेज, वायु (समीर), विद्युत, मेघ गर्जना, इत्यादि में तुम को "एकं सत्" ईश्वर देखने से वह रोके, जैसा कि प्राचीन ऋषियों ने देखा था। (बल्कि उस का कहना यह है कि तुम) ईश्वर को सृष्टि में प्रकृति रूप से अवश्य देखो, परन्तु इससे अधिक ज़रा अपनी दृष्टि और भी फैलाओ, अर्थात् प्रयोगशाला (Laboratory) और शास्त्राध्यन भवन (Science room) में भी ईश्वर को देखो। रसतंत्रवेत्ता (Chemist) की मेज़ तुम्हें यज्ञ की अग्नि के समान पवित्र प्रतीत हो। पुरातन होमाग्नि व यज्ञ की अग्नि को तुम पुनर्जीवित नहीं कर सकते, परन्तु उस पुरातन काल के प्रेम, आदर और भक्ति का पुनरुद्धार तुम अवश्य कर सकते हो। और ऐसा तुम्हें अवश्य करना चाहिए। तुम्हें अपने वर्तमान कर्मों पर, जो समय की आवश्यकतानुसार तुम्हारे कर्तव्य बन गये हैं, इन उच्च भावों का प्रकाश अवश्य डालना चाहिये। अगेसिज़ (Agassiz) सवाल करता है कि "क्या सृष्टि (प्राकृत्य दृश्य, nature) का निरीक्षण करना ईश्वर के विचारों को फिर से विचार करना नहीं है ? तुम्हारे सब कामों में पवित्रता और शुचिता का भाव भर जाना चाहिये। मैं यज्ञ की अग्नि को प्रज्वलित नहीं कर सकता इसलिये मैं लुहार की अग्नि को यज्ञाग्नि के सदृश पवित्र बनाऊंगा। प्रियवरों ! यह तुम्हारी राम-दृष्टि पर निर्भर है कि तुम किसान की कुदाली को इन्द्र का रथ बना दो। इस ईश्वरी-दृष्टि का प्राप्त करना ही सच्चे यज्ञ का सार वा भावार्थ है।

अपनी वर्तमान राष्ट्रीय स्थिति का अनुभव न करने से तुम अपने भावी जीवन या भावी आत्मा को बिलकुल भुलाये देते हो। ऐसे भयंकर नास्तिक मत बनो। इस जीवनकाल में तुम्हारा मुख्य कर्तव्य अपने भविष्य-जीवन के सम्बन्ध में है। इस लिये इस तरह से रहो कि तुम्हारा आर्दशमय जीवन अर्थात् तुम्हें जैसा होना चाहिए, वैसा प्रत्यक्ष रूप से होना, तुम्हारे लिये सुलभ हो जाये। इस तरह से जीवन व्यतीत करो कि पचास वर्ष के पश्चात तुम्हें स्वयं अपने ऊपर लज्जा न उत्पन्न हो। इस विधि से रहो कि भारतवर्ष की भविष्य सन्तान में तुम्हारी भावी आत्मा अर्थात् तुम्हारी भविष्यत सन्तान अपने को निराशा वत नष्ट हुई न समझे।

हे धर्म परायण हिन्दू लोगो! अपने अन्तःकरण को निरमल कर डालो, अपनी सदसद्विवेक बुद्धि को जागृत करो। कर्म कांड रूपी दो मालिकों की सेवा करने की तुम्हें कोई आवश्यकता नहीं। जिन वस्त्रों की तुम्हें वास्तविक ज़रूरत है उन के साथ तुम्हें उन जीर्ण और निरुपयोगी वस्त्रों के बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं कि जिन वस्त्रों को तुम्हारे पूर्वजों ने गत संसार के स्मारक रूप से या केवल अपनी यादगार में तुम्हारे लिये छोड़ा है। जो दोष मनुष्यों और राष्ट्रों को दिवालिया बनाता है वह यह है कि लोग अपना मुख्य उदिष्ट मार्ग छोड़ कर टेढ़े रास्ते से काम करने को दौड़ते हैं। दृढ़ संकल्प मनुष्य नीच कर्म करने से साफ़ इनकार कर देता है।

यज्ञ का अर्थ है देवताओं को कुछ भेंट करना। अब प्रश्न यह है कि वेदान्ती (और प्रायः वैदिक) परिभाषा में 'देव' शब्द का क्या अर्थ है? 'देव' का अर्थ है प्रकाश और आयुष्य देनेवाली शक्ति। इस रीति से बहु वचन में 'देवता'

शब्द का अर्थ है ईश्वरी शक्ति के भिन्न २ अविष्कार (विभूतियां manifestations) जो या तो अधिदैविक शक्ति के रूप से होते है या आध्यात्मिक शक्ति के रूप से। फिर 'अधिदैविक' और 'आध्यात्मिक' शब्दों की तुलना करने से यह प्रतीत होता है कि 'देवता' शब्द प्रायः समष्टी रूप से शक्ति का वाचक होता है। 'चक्षु' शब्द एक व्यक्ति की दृष्टि का बोधक है। परन्तु चक्षु के देवता का अर्थ है सब प्राणियों में देखने की शक्ति और उस का नाम है आदित्य। और जिसका चिन्ह (symbol) सारे विश्व का नेत्र रूप यह वाह्य सूर्य्य भगवान् है। हस्तेंद्रिय का अर्थ है एक मनुष्य के हाथ की शक्ति, परन्तु हस्तेंद्रिय के देवता से तात्पर्य्य है सब हाथों को हिलाने वाली शक्ति। समष्टीरूप दृष्टि से इस शक्ति का नाम 'इन्द्र' है। इसी प्रकार जब कभी हम इन्द्रियों के देवता के विषय में बात करते हैं तो यदि उसका कुछ अर्थ हो सकता है तो वह केवल उपरोक्त अर्थ ही होसकता है।

अब, यज्ञ में देवताओं के नाम बलिदान करने का युक्ति सिद्ध अर्थ (rational import) क्या है ? इसका अर्थ यह है कि हम अपनी व्यक्ति विषयक शक्ति को तदानुसार समर्ष्टी रूपी शक्ति के अर्पण कर दें, अथवा अपने पड़ोसियों को अपना ही स्वरूप अनुभव करके अपने व्यक्ति संबन्धी अल्प स्वरूप को सर्वव्यापी आत्मा के साथ अभेद कर दें और अपनी इच्छा को ईश्वरीय इच्छा में लीन कर दें। उदाहरणार्थ आदित्य को भेंट करने से यह तात्पर्य्य है कि हमारा यह दृढ़ संकल्प और निश्चय है कि हम अपने बुरे व्यवहार से किसी भी मनुष्य की दृष्टि को क्लेश न पहुचायें और अपनी ओर देखनेवालों को प्रेम, प्रसन्नता और आशीर्वाद ही भेंट किया करें, और समस्त नेत्रों में ईश्वर को अनुभव करें। यह

आदित्य की भेंट चढ़ाना है।

इन्द्र की भेंट चढ़ाने का यह अर्थ है कि देश के सारे हाथों के उपकारार्थ श्रम करना चाहिये। योग्य अन्न को योग्य रीति से ग्रहण करने ही से हर एक का पोषण होता है, हाथ और भुजा के पट्ठे व्यायाम अर्थात् काम करने ही से पुष्ट होते और बढ़ते हैं। इसलिये इन्द्र को हव्य दान करने से यह तात्पर्य्य है कि जो लाखों ग़रीब आदमी बेरोज़गार हैं, उनके लिये जीविका ढूंढो और उन्हें किसी धन्धे में लगा दो। हाँ, इन्द्र को जब हव्य मिल जायगा, तो देश भर में समृद्धि विराजमान हो जायगी। जिस समय सारे हाथ काम में लग जायेंगे, तब बिचारी दरिद्रता कहां रह सकती है? इंगलेंड में बहुत कम फ़सल होती है, अर्थात् बहुत कम किसान हैं, पर तौ भी देश मालामाल है। इसका कारण क्या है? इसका कारण यह है कि हस्त-देवता (इन्द्र) को वहां कला कौशल और उद्योग धन्धों के अन्न से इतना तृप्त कर दिया जाता है कि उसे अजीर्ण तक हो जाता है। सब के हित के लिये हम सब का अपने हाथों को मिला कर काम में लगाना ही इन्द्र-यज्ञ है। विश्व के हित के लिये सब का अपने मस्तिष्क मिलाना ही वृहस्पति यज्ञ है। हृदय के देवता चन्द्रमा का यज्ञ यह है कि हम सब अपने हृदयों को एक कर लें। इसी प्रकार अन्य देवताओं के विषय में भी समझ लीजिये।

सारांश यह है कि यज्ञ करने का अर्थ अपने हाथों को सारे हाथों के, अथवा सम्पूर्ण राष्ट्र के अर्पण कर देना है। अपने नेत्रों को सब नेत्रों के अथवा सारे समाज के समर्पण करना है, अपने मन को सब मनों के भेंट करना है, अपने हित को देश हित में लीन करना है, और सब को ऐसा भान करना है कि मानो वे सब मेरा ही स्वरूप (आत्मा) हैं।

दूसरे शब्दों में इसका अर्थ 'तत्वमसि' (वह तू है) को व्यवहार में लाकर अनुभव करना है। जैसे सूली पर चढ़ने के पश्चात ईसा के दिव्य स्वरूप का पुनरुत्थान हुआ था, उसी प्रकार देहात्मा का बध करने के पश्चात आपही विश्वात्मारूप का पुनरुत्थान होता है। यही वेदान्त है।

Take my life and let it be
  Consecrated, Lord, to Thee.
Take my heart and let it be
  Full saturated, Love, with Thee.
Take my eyes and let them be
  Intoxicated, God, with Thee.
Take my hands and let them be
  For ever sweating, Truth, for Thee.

प्राण, महा प्रभु ! स्वीकृत कीजे, निज पद अर्पित होने दीजे।
अन्तःकरण नाथ ! लै लीजे, निज से उसे, प्रेम भर दीजे।
स्वीकृत कीजे नेत्र हमारे, निज से मतवाले कर प्यारे।
लीजे सत प्रभु ! हाथ हमारे, सदा करें श्रम हेतु तुम्हारे।

(नारायणप्रसाद अरोड़ा,)

[इस कविता में शब्द 'प्रभु' से तात्पर्य आकाश में बैठा हुआ, बादलों में जाड़े के मारे सिकुड़ने वाला अदृश्य हौवा (Bugbear) नहीं है]। 'प्रभु' का अर्थ है सर्वस्व अर्थात् सारी मानव जाति।

यह यज्ञ प्रत्येक मनुष्य को करना चाहिये। और यही विश्वव्यापी धर्म (Universal Religion) होना चाहिये। हे भारत वर्ष ! इसको स्वीकार कर, नहीं तो तेरा अन्त है। इसके अतिरिक्त तेरे लिये कोई दूसरा उपाय नहीं।

राम तुम से यह कहता है कि तुम्हारे शास्त्रों में जो लिखा है कि यज्ञ के समय देवता प्रत्यक्ष मूर्तिमान हो जाते थे, यह बात अक्षरशः ठीक है। परन्तु इस से तो केवल सामुदायिक एकाग्रता (ध्यान) का ही प्रभाव सिद्ध होता है। मानस-शास्त्र (Psychology) की आधुनिक खोज (research) से यह सिद्ध हुआ है कि एकाग्रता का प्रभाव किसी अवसर पर उपस्थित हुये एक मन के लोगों की संख्या के वर्ग के अनुसार बढ़ता है। यही सतसंग की महिमा है। यदि अकेला राम किसी कल्पना को मूर्तिमान कर सकता है, तो वे एक ही मन के लाखों लोग जो एक ही मंत्र को जपते हों और एक ही स्वरूप का ध्यान करते हों, कैसे उस कल्पना को मूर्तिमान किये बिना रह सकते हैं?

परन्तु इस से क्या सिद्ध होता है? इससे यह सिद्ध होता है कि तुम्हीं अर्थात तुम्हारा सर्वव्यापी आत्म-स्वरूप ही सब देवताओं का पिता और कर्ता है। परन्तु ये देव और देवता जो तुम्हारे मन की कल्पना मात्र हैं, तुम्हारे ज़ाहिरी, मिथ्या, परिच्छिन्न और एक-देशीय 'अहं' पर हुकूमत करते हैं। अपने भाग्य के कर्ता स्वयं तुम ही हो। चाहे तुम भय और नर्क में पड़े हुये नीच दास बने रहो, या चाहे तुम अपने जन्म-सिद्ध-अधिकार से वैभव का मुकुट धारण करो। अब इन में जो तुम्हें अच्छा लगे वह करो और अपनी योग्यतानुसार बन जाओ।

फिर, किसी विचार या कल्पना को मन में खचित करने के लिये ठीक २ चिन्हों और संकेतो से कैसा अपूर्व फल होता है, यह बात मानस-शास्त्र की दृष्टि से राम को भली भाँति मालूम है। वह मनुष्य जो पूर्ण निश्चय रूप से आत्म समर्पण करने में लवलीन है, मानो वह अपने हाथों का पाणिग्रहण

विश्व के हाथों से करा रहा है; जब उसका मन अनन्य भक्ति से गद्गद् हो रहा है और सारा शरीर इस पवित्र निश्चय से रोमांचित हो रहा है, तो वह बाह्यरूप से भी अग्नि में हवि डाल रहा है जिस से उसका तात्पर्य्य यह है कि वह अपने अल्पात्मा को विश्वात्मा के समर्पण कर रहा है और मंत्रों को उच्चारण करते हुये अपने आन्तरिक संकल्प वा निश्चय को ऊंचे 'स्वाह' शब्द से प्रकाशित कर रहा है; तो बतलाओ वह कौन सी गंभीर मुहर है जो संकेतों द्वारा इस पवित्र काम पर नहीं लगाई जाती। परन्तु हाय रे दुर्दैव! जहां केवल मोहर ही मोहर हो और कोई वास्तविक कार्य्य न हो, तो उस ढोंग से क्या आशा की जा सकती है? जहां पर विचार और भावना का बिलकुल अभाव है, और अर्थ-शून्य विधि बलात्कार हमारे गले मढ़ी जाती है, वहां यही दशा समझनी चाहिये कि शरीर से प्राण तो निकल गये परन्तु निर्जीव देह अभी पड़ी है। इस निर्जीव शव को शीघ्र जला डालो, अब इस की अधिक सेवा सुश्रूषा न करो, क्योंकि यह बड़ा हानिकारक और घातक है। अब सजीव नूतन विधि को स्वीकार करो।

लोग कहते हैं कि नदी अपने पुराने मार्ग ही से सुगमता के साथ बह सकती है, इस लिये प्राचीन संस्थाओं में नवीन जीवन डालने का प्रयत्न करना चाहिये। परन्तु राम कहता है कि यह बात प्रकृति के विरुद्ध है। क्या तुम एक भी ऐसी नदी का नाम बता सकते हो जिसने एक बार अपना पुराना मार्ग छोड़ दिया और फिर उसी रास्ते से बहने लगी हो? अथवा क्या तुम एक भी ऐसा उदाहरण दे सकते हो कि जिस शरीर का प्राण एक बार निकल गया, उस में फिर नवीन प्राण ने प्रवेश किया हो? पुरानी बोतलों में नई मदिरा भरने

मे काम नहीं चलेगा। जिस गन्ने का एक बार रस निकल गया, उसकी उसी चिफुरी (शरीर) में फिर रस नहीं आसकता। उसको जला देना चाहिये। "पदार्थ और उनकी रचनाओं के स्वरूप और उनके परस्पर के सम्बन्ध सदैव बदलते ही रहते हैं। जिस स्वरूप या सम्बन्ध को उन्हों ने एकबार त्याग दिया उसे वे फिर नहीं ग्रहण करते"। आओ हम इन यज्ञ की आहुतियों ही की आहुति इस ज्ञानाग्नि में करदें। यज्ञ के सच्चे तत्त्व के भावार्थ को हम देश-कालानुसार-रीति से ग्रहण करेंगे। कुछ लोग ऐसे हैं जिनके लिये सदैव बैठे २ प्राचीन गत वैभव को स्मरण करते रहना ही देश-भक्ति है।

नवीन स्थितियों में अपने पुराने घर के भार को पीठ पर लादे २ फिरने वाले ये घोंघा हैं। ये ऐसे दिवालिये महाजन हैं कि जो बैठे २ पुराने और निरुपयोगी बही खातों ही को देखा करते हैं। केवल इसी विचार में सारा समय न गंवाओ कि "भारतवर्ष किसी समय कैसा बढ़ा चढ़ा था"। अपनी सारी अनन्त शक्ति एकत्रित करो और यह भाव मन में धारण करो कि "भारतवर्ष फिर बढ़ेगा"।

इतिहास और स्वानुभव से यह सिद्ध होता है कि जब लोग एक जगह एकत्रित होते हैं और उनकी दृष्टि और हाथ परस्पर मिलते हैं, उस समय अन्तःकरण के एक होने का अमूल्य प्रसंग उपस्थित हो जाता है। ज्ञात या अज्ञात रीति से एक दूसरे के विचारों और भावनाओं में अदला बदला हो जाता है, और सब लोगों के विचार, मनोवृत्ति और परमार्थ निष्ठा एक समान भूमि पर आकर एकत्रित हो जाती हैं। इससे पारस्परिक प्रेम और एक्यता उत्पन्न होती है। हज़रत मुहम्मद की चतुरता(प्रज्ञा) तो इसीसे प्रत्यक्ष है कि उसने उद्दण्ड और लड़ाकू अरबों को प्रति दिन ईश्वर के सन्मुख कम से

कम पाँच बार उपस्थित होने के लिये बाध्य कर दिया। इस रीति से उसने महान तित्तर बितर लोगों का एक संगठित राष्ट्र बनाने में सफलता प्राप्त की।

यज्ञ, तीर्थ, मेले, मंदिर, न्यायालय, मठ वा भोजनालय, विवाहोत्सव, स्मशान-यात्रा, सभा, सामाजिक वार्षिकोत्सव, तथा आजकल के सम्मेलन और राष्ट्रीय सभाओं के जलसे, यह सब भारतवर्ष के लोगों को एकत्रित करने के स्थान हैं। इसी प्रकार पश्चिम में गिरजाघर, होटल, प्रदर्शनी, पर्यटन (विहार), विश्वविद्यालय, सार्वजनिक व्याख्यान, क्लब और राजकीय सम्मेलन इत्यादि साधारण रूप से लोगों को एकत्र करते हैं। परन्तु विशेष करके उन्हीं जमघटों में एक्यता वर्धक रहती है कि जिनमें हम सात्विक भाव से मिलते हैं और जहां पर हम एक्यतारूपी वृक्ष को प्रेमरूपी पवित्र जल से सींचते और दृढ़ करते हैं। चिरस्थायी एक्यता वहीं उत्पन्न हो सकती है जहां अन्तःकरण एक होते हैं। केवल शरीरों के मेल से कोई उत्साहजनक परिणाम नहीं उत्पन्न होता, बल्कि उलटे वैमनस्य इत्यादि ही प्रायः बढ़ते हैं। खींच खांच करके केवल बाहरी एक्यता करने की कोई आवश्यकता नहीं। जहां अन्तःकरण की एक्यता नहीं होती, वहां की मैत्री उन स्फोटक पदार्थों के मिश्रण से भी अधिक भयंकर होती है कि जिनके मिलाप का परिणाम उच्च स्वर से कटजाना होता है। केवल लातों ही के हिलाने से दो हृदय एक दूसरे के समीप नहीं आ सकते। हमें केवल इसी बात की चिन्ता और आवश्यकता न होनी चाहिये कि हमारे मित्रगण और अनुयायी सदैव हमें घेरे रहें, वरन जीवन के मूल झरने और उत्पात्ति स्थान से हम जितना सन्निध होंगे, उतने ही मित्र हमको स्वयं मिल जायेंगे। बेंत का वृक्ष पानी के समीप रहता है

और अपनी जड़ें उसी तरफ फैला देता है जिससे बहुत से पेड़ आपही आप पैदा हो जाते हैं। इसी प्रकार हमें भी उस सर्व चैतन्य रूप उत्पत्ति स्थान से प्रकट होना चाहिये और हमारे स्वभाव के समान-शील बहुत से बेत रूपी लोग अपने इर्द गिर्द हम पायेंगे। प्रथम आवश्यकता केवल इसी बात की है कि तुम सत्य के झरने के निकट खड़े रहो।

फिर, दूरबीन के शीशे तभी ठीक काम कर सकते हैं कि जब उनका किरणकेन्द्रान्तर (focal lengths) भी ठीक बैठा हुआ हो। सूर्य्य की ग्रहणमाला (solar system) के ठीक २ चलने का कारण यह है कि भिन्न २ ग्रहों के ग्रहपथ में प्रमाण-बद्ध अन्तर है। बहुधा ऐसा होता है कि यदि हम अपने कुछ मित्रों के सम्बन्ध को तनिक बढ़ा दें या तनिक कम कर दें, तो हम उनके साथ काम नहीं कर सकते। मित्रता की ग्रहमाला में प्रेम-पूरति और स्थाई एकयता प्राप्त करने के लिये यह परम आवश्यक है कि परस्पर का आध्यात्मिक अन्तर योग्य रीति से रक्खा जाये। कभी २ ऐसा होता है कि लोग या तो बहुत ही घनिष्ट संबन्ध कर लेते हैं या फिर बिलकुल ही अलग हो जाते हैं, इस भूल का परिणाम प्रायः यह होता है कि वे प्रत्येक मनुष्य पर अविश्वास और शंका करने लगते हैं। प्रेम, मेल और एकयता उसी समय प्राप्त हो सकती है जबलोगों में योग्य रीति से ठीक २ अन्तर रक्खा जाता है।

राष्ट्रीय उत्सवों को सुधार कर ऐसा बनाना चाहिये जिससे सब श्रेणी के लोगों को एक साथ एकत्रित होने का अवसर मिले और आध्यात्मिक वा मानसिक आकर्षण से तो सहधर्मी ढूंढ कर उनसे एकयता प्राप्त करें और इस रीति से प्राकृतिक नियमानुसार परस्पर सम्बन्ध का उचित अन्तर

बनाये रक्खें। राष्ट्रीय-हेमन्तोत्सव दक्षिण भारत के सुखदायक प्रदेशों में, राष्ट्रीय ग्रीष्मोत्सव उत्तरी पर्वतों के महान् दृश्य में, बसन्तोत्सव वंग देश में, और शरद ऋतु का सम्मेलन पश्चिमीय हिन्दुस्तान में होना चाहिये। ये उत्सव किसी नाम व संप्रदाय विशेष की सीमा से ऊपर रहने चाहियें अर्थात् इन उत्सवों का सम्बन्ध किसी धर्म विशेष या सम्प्रदाय विशेष से न होना चाहिये। परन्तु इन को सब श्रेणी के प्रतिनिधियों की समितियों द्वारा संचालित करके राष्ट्रीय रूप धारण करना चाहिये। वहां पर कला कौशल्य की प्रदर्शनी, हर प्रकार की दुकानें, पदार्थ-संग्रहालय, पुस्तकालय, प्रयोग शाला, क्रीड़ा भवन, व्याख्यानों के लिये मैदान, सामाजिक सभायें, परिषद, कांग्रेस और (अन्त में यद्यपि कम उपयोगी नहीं) राष्ट्रीय नाट्य शालाओं आदि द्वारा भिन्न २ प्रान्तों के अनेकानेक धर्म और पंथ के लोग एकत्र हों, और वहां पर जीवन के गंभीर (serious) और विनोद दायक (convivial) दोनों अंगों की पूर्ति की सामग्री उपस्थित होनी चाहिये। वहां पर, प्राचीन भारत की प्रथा के अनुसार, भगिनी अपने भाई के साथ, पत्नी अपने पति के साथ घूमें फिरें और पुत्र अपनी माताओं का हाथ पकड़े हुये इधर उधर टहलते हुये दिखाई दें, जैसा कि वर्तमान समय में बम्बई में रिवाज है। इस के साथ ही साथ यह भी हो कि सब श्रेणी के, सब पंथों के और सब धर्मों के वक्ताओं की प्रेममयी वक्तृता देने के लिये एक समान-व्यास गद्दी (Common platform) हो।

राष्ट्रीय साहित्य का उत्पन्न करना, उसकी उन्नति करना, उसका प्रचार करना, और वर्तमान जीवित देशी-भाषाओं में एक्यता पैदा करना, यह जातीय एक्यता उत्पन्न करने का

एक दूसरा साधन है।

भिन्न २ स्थानों पर 'ॐ मन्दिर' स्थापित होने चाहिये। जहां सम्पूर्ण धर्मों के लोग स्वतन्त्रता से जायें, पढ़े, ध्यान करें, शान्ति से प्रार्थना करें और एक दूसरे को सहानुभूति. कृपा और प्रेम दृष्टि से देखे, परन्तु आपस में बात चीत न करें।

युवा पुरुष इकट्ठे मिलकर खुले मैदान में व्यायाम कर सकें, और राम की रीति से प्रत्येक शारीरिक गति को एक आध्यात्मिक भावना सूचक चिन्ह में बदल सकें और इस प्रकार उपरोक्त रीति से उसी भाग को आहुति देने के समान करते हुए मन की भावना पर ईश्वरी मोहर लगवाने में सफल हो सकें।

स्नान करते समय हमें उचित (उपयोगी) और पवित्र करने वाले गीत गाना चाहिये, पर वे ऐसी भाषा में न हों जिसे हम समझ ही न सकते हों।

ऋतु के अनुसार तरुण मंडली को नदियों के किनारे, हरी घास पर, अथवा वृक्षों की छाया में या आकाशछत्र के नीचे एक साथ बैठ कर भोजन करना चाहिये। और प्रत्येक ग्रास के साथ भीतर और वाह्य से अर्थात् मन और बचन से ओं ओं का उच्चारण करते जाना चाहिये। राष्ट्रीय गीत जिनके शब्द आग बगूला हैं और जिनके विचार चैतन्योत्पादक हैं यदि एक साथ मिल कर गाये जायें तो वे एक्यता उत्पन्न करने में जादू का काम करते हैं।

हवन के लिये कृत्रिम अग्नि प्रज्वलित करने की अपेक्षा सात्विक तरुण पुरुषों को चाहिये कि प्रभात काल अथवा सायंकाल के सूर्य्य बिम्ब के तेज ही को, अपने नाटे, तुच्छ अहंकार को आहुति देने की, होमाग्नि समझें।

Disciple! up, Untiring hasten,
To bathe thy breast in morning red.

उठो उठो हे शिष्य! सकल आलस तज दीजे।
प्रात लालिमा मध्य उरस्थल मज्जन कीजे॥

(नारायणप्रसाद)

उस तेज के सागर में डुबकी मारो और तेजोमय वा तेज का पुंज हो कर बाहर निकलो, और अपने दिव्य प्रकाश से सम्पूर्ण जगत को स्नान करादो अर्थात् आच्छादित कर दो। इसी का नाम हवन है।

लोगों में, विशेष करके स्त्रियों और बालको में (और इस लिये भावी सन्तान में) प्रेम और एकयता उत्पन्न करने का एक उत्तम उपाय नगरकीर्तन है, अर्थात गायन और नृत्य करते हुये या अच्छे २ तमाशे दिखाते हुये रास्ते से निकलना और निडर होकर सत्य की जय २ कार मनाना।

सत्य के लिये देश के किसी नेता पर निर्दयता से अत्याचार होना अथवा किसी धर्मवीर का प्राण लिया जाना सारे देश में एकयता उत्पन्न करने में रामबाण का काम करता है। पर यह जीवन तुल्य मरण, नहीं २, निस्वार्थ का मरण तुल्य जीवन ही है जो न केवल एक ही राष्ट्र को बल्कि अन्त में समस्त राष्ट्रों को मिला देता है। यदि एक मनुष्य भी ईश्वर में रहने सहने लग जाय तो सम्पूर्ण राष्ट्र उसके हाथों से एकयता प्राप्त कर सकता है।

जहां पर जवान लोगों को रक्तपात और अग्नि की दीक्षा अर्थात फ़ौजी शिक्षा दी जाती है, वहां पर धैर्य्य, सत्याचरण और स्वार्थत्याग की भावना इत्यादि सद्गुणों का अंकुर जमाया जाता है।

स्त्रियों, बालकों और मज़दूरों की शिक्षा की उपेक्षा करना मानो अपनी रक्षा करने वाली शाखा को काटना है, नहीं २ यह तो अपनी राष्ट्रीयता के वृक्ष की जड़ही पर कुठार चलाना है।

हे ऋषियों क बीसवीं शताब्दी के वंशजों! यदि तुम अपनी श्रुतियों के उपदेशों को समझते हो, तो तुम्हें अपनी स्मृतियों के जाति पांति (class and creed) वाले संकीर्ण और हानिकारक बन्धनों को अवश्य तोड़ना पड़ेगा। परन्तु यदि तुम अपनी सच्ची आत्मा को भी नहीं पहचानते और श्रुतियों की कुछ परवाह भी नहीं करते और बीते हुये जाड़े के कपड़े विकट गरमी में पहनने का आग्रह करते हो, तो अपने पूर्वजों की बुद्धि का स्मरण करके ज़रा कृपा पूर्वक अपनी स्थित का अनुभव तो ज़रूर कीजिये। मनुष्य शरीर केवल काल बद्ध ही नहीं है वरंच देश बद्ध भी है। काल की दृष्टि से तुम हिमालय के ऋषियों के खास वंशज ही क्यों न हों, परन्तु देश की दृष्टि से विचार करने पर यह नहीं हो सकता कि विज्ञानी और कला कौशल विशारद यूरुप और अमेरिका निवासियों के साथ समकालीन होने के कारण तुम्हारा उनका जो सम्बन्ध है उसे तुम न मानो।

प्राचीन उपनिषदों के ज्ञान को अपना अनुवंशिक (मौरूसी) अधिकार समझ कर प्राप्त तो अवश्य करलो, परन्तु लौकिक बातों में जापान और अमेरिका के व्यावहारिक ज्ञान को ग्रहण करने और अपने में उसे धारण करने ही से इस संसार में तुम्हारा निर्वाह होगा। यदि एक ओक (oak) के वृक्ष का कोमल पौधा अपने आस पास के जल, वायु, पृथ्वी और प्रकाश से अपने पालन पोषण की सामग्री को एकत्रित करके अपने में धारण नहीं करता और अपने प्राचीन

काल के बीज ही का दम भरता रहता है, तो शीघ्र ही उस का नाश हो जायगा। राम से कभी नहीं हो सकता अथवा राम का यह विचार कदापि नहीं कि वह तुम से कहे कि तुम अपने राष्ट्रीय व्यक्तित्व को छोड़ दो। परन्तु राम तुम से यह अवश्य कहता है कि तुम्हें उन्नति करनी चाहिये और भूत और वर्तमान दोनों को स्वीकार करके आगे बढ़ना चाहिये। जिस प्रकार और लोग तुम्हारी प्राचीन ब्रह्मविद्या को अपना रहे हैं, उसी तरह तुम्हें भी उनके भौतिक शास्त्र को अपनाना चाहिये।

इतिहास और सम्पत्ति-शास्त्र से यह स्पष्ट है कि जिस तरह से एक वृक्ष की बाढ़ उस के क़लम करने पर अवलम्बित है, उसी प्रकार एक राष्ट्र की बाढ़ भी समय २ पर कुछ लोगों को देशान्तर करने पर निर्भर है। यदि हम दीन और बेकार भूखे भारत वासियों को संसार के उन देशों में भेजें जहां की आबादी घनी नहीं है, वहां रह कर (कमाने खाने) से वे जीवित रहेंगे और उन के द्वारा भारत वर्ष दूर देशों में भी अपनी जड़ें फैला लेगा और वहां भी उस का अड्डा जम जायेगा। इस रीति से प्राचीन भारत के आलस्य का नाश होगा और उस का बोझा भी कम होगा, और बोझा उठाने में थकावट भी उसे कम होगी, साथ ही हवा को विषैली करने वाली और हानिकारक कार्बनडाइआक्साइड (carbon dioxide) कम पैदा होगी। यदि इस कार्य्य को तुम अपनी खुशी से करोगे, तब तो मानो तुम ने देवताओं को अपने वंश में कर लिया, नहीं तो ईश्वरी-नियम का अटल चक्र बिना रोक टोक के चला ही जायगा और जो कोई उस के रास्ते में आयेगा उस को चकना चूर कर देगा। और जब तुम अपने को विनाश होने से

नहीं बचाते तो यह ईश्वरी नियम ही तुम्हारे चित्तों को रक्षा करेगा। अब जैसा तुम्हारी समझ में आये वैसा करो। परन्तु परमेश्वर अपनी दयालुता से अवश्य प्लेग और दुष्काल द्वारा तुम्हें काट छांट कर ठीक कर ही देगा। "यदि कोई मनुष्य अपनी बुद्धि का उपयोग करके सृष्टि के नियमानुसार चलेगा, तो वह ज़रूर बच जायगा और उसका ज्ञानयुक्त प्रयत्न प्राकृतिक चुनाव का रूप धारण करेगा और इस रीति से उस मनुष्य को जीवन-कलह से मुक्ति प्राप्त हो जायगी। केवल ऐसा ही आदमी कोरा बच सकता है, अन्य कोई नहीं।

अब कुछ लोगों का यह कथन है कि "क्यों विचारे निर्धन, बेकार लोग घर से निकाल दिये जायें ?" यह आक्षेप केवल वही लोग करते हैं जिनका गृह सम्बन्धी विचार बहुत संकीर्ण है। अच्छा, फिर बताओ कि जिस कोठरी में तुम ने जन्म लिया था उससे बाहर क्यों निकलते हो ? और घर छोड़ कर सड़क पर क्यों आते हो ? तुम भूमि और मट्टी के ही बालक नहीं हो, बल्कि स्वर्ग के भी हो, अर्थात् जिस रीति से तुम भूलोक के बालक हो, उसी रीति से स्वर्गलोक के भी बालक हो। तुम स्वर्ग लोक के बालक ही नहीं वरन् साक्षात् स्वर्ग लोक हो। तुम्हारा घर सर्वत्र है। एक ही स्थान पर अपने को न बांधो। वर्तमान समय में यह कदापि नहीं हो सकता कि भारत अपने को सारी दुनिया से अलग रख कर एक कोठरी में बन्द रहे। एक समय ऐसा था जब भारतवर्ष एक पृथक देश समझा जाता था और ईरान दूसरा देश और मिसर तीसरा देश इत्यादि। परन्तु आज भाप और बिजली की सहायता से देश काल का बन्धन बिलकुल टूट गया और समुद्र एक रुकावट होने की अपेक्षा एक राज-

पथ बन गया है। पूर्व समय के शहर मानो आज कल की सड़कें हैं, और प्राचीन काल के देश मानो इस समय के शहर बन रहे हैं। और यह सब हाल उसी एक छोटे से पृथ्वी के टुकड़े का है जिसे संसार कहते हैं। इस लिये तुम्हारी "स्वगृह" कल्पना को विस्तृत करने का यह बड़ा उत्तम समय है। हे प्रकृति और ईश्वर के बालको ! सब देश तुम्हारे ही हैं और मनुष्य मात्र तुम्हारे भ्राता और भगिनी हैं। भारत वर्ष के गले में जो लाखों भिखारियों का घंटा या डुबादेने वाला पत्थर बंधा है, उसकी गुरुता बढ़ाने के बदले समाज के एक उपयोगी कार्यकर्ता होकर जहां तुम अच्छी तरह से रह सकते हो वहीं जाओ। तुम्हें ईश्वर और मानवजाति की शपथ है, जाओ, चले जाओ।

संभव है कि बहुत से लोगों को भारत के दुःख निवारण का प्रश्न राष्ट्रिय भान हो। परन्तु राम की राय में यह एक राष्ट्र दर राष्ट्रिय (international) अर्थात् परस्पर जन समूह संबन्धी प्रश्न है। अन्य लोगों के लिये यह केवल देश-भक्ति का सवाल हो, परन्तु राम के लिये तो यह मनुष्यमात्र का सवाल है। अपने बच्चों को अपनी आँखों के सामने मरते हुए देखने की अपेक्षा यह बहुत अच्छा है कि चाहे वे मुझ से दूर रहें परन्तु जीते तो रहें। आँखों में प्रेमाश्रु भर कर राम तुम को बाहिर जाने की आशीर्वाद देता है, जाओ, प्रणाम।

यदि विदेश में उदर निर्वाह से अधिक कमाई करने के योग्य हो जाओ, तो फिर स्वदेश को लौट आना। जिस प्रकार से जापानी युवक व्यावहारिक ज्ञान को पश्चिम से अपने देश में ला रहे हैं, उसी तरह तुम भी अपने देश में लौट कर विदेश में सीखी हुई विद्या से इस को आनन्दित कर दो। यदि परदेश में तुम अपने उदर निर्वाह से अधिक कमाई नहीं कर

सकते, तो वहीं रहो। और यदि तुम भारत माता के दुःखी वक्षस्थल पर निरुद्योगी जोंक होकर रहना चाहते हो, तो इससे यही अच्छा है कि तुम अरेबियन समुद्र में एकदम कूद पड़ो और वहीं अरेबियन समुद्र का अतिथि सत्कार ग्रहण करते रहो, और भारतवर्ष में पुनः पैर रखने का नाम मत लो। घर का प्रेम, और सच्ची देशभक्ति वा पवित्र देशानुराग तुम से ऐसा ही करने को आग्रह करते हैं।

राम जितना प्यार मनुष्यों को करता है, उतना ही इतर प्राणियों को और पत्थरों को भी करता है। राम के लिये तो बन्दर उतने ही प्रिय हैं जितने कि देवता। परन्तु तथ्य तो तथ्य ही है, और लानत उस पर है कि जो झूठ बोलता है। जौहबुल (अंग्रेज़) के चंगुल से जो थोड़ा सा छुटकारा आयर्लैंड निवासियों को मिला, वह इस रीति से ही मिला कि बिचारे निर्धन आयर्लैंड निवासी हर साल हज़ारों का झुंड बना कर देशान्तर करते हुये अमेरिका में जा बसे।

राम की यह भी इच्छा नहीं कि भारतवर्ष के आलसी मनुष्यों से प्यारे अमेरिका और अन्य देशों को भर दिया जाए। वस्तुतः स्थिति यह है कि तुम्हारे विदेश गमनसे उनके स्वास्थ्य में भी हितकर होगा। जो वृक्ष एक ही जगह सटकर उगते हैं, वे बहुत ही क्षीण और दुर्बल होते हैं। यदि वृक्षों के झुंड में से एक आध पेड़ को मूल सहित उखाड़ कर किसी अन्य स्थान में लगा दिया जाये, तो वह एक महा प्रचंडवृक्ष बन जायेगा। जब तुम विदेश में जाते हो, तो तुम जिस भूमि में जाकर फलते फूलते हो, वहां के भूषण बन जाते हो। अमेरिका के वर्तमान धनाढ्य लोगों की स्थिति पहले ऐसी ही थी और उन में से अधिकतर बिचारे यूरोप से आकर बसे थे, जो वास्तव में निर्धन थे। सब राष्ट्रों का इतिहास पढ़ने से

यह सिद्ध होता है कि देशान्तर करने से लोगों की सामाजिक अवस्था सुधर जाती है।

यज्ञ के सम्बन्ध में एक दो बातें और कहना है। कभी २ यज्ञ या हवन का अर्थ 'त्याग' भी किया जाता है। परन्तु इस पवित्र शब्द त्याग को निष्क्रिया, गति-हीनता (passive helplessness) और आत्मघातक दौर्बल्य से एक न मिलाना चाहिये। और न निष्ठुर शारीरिक क्लेश कारक वैराग्य का इस त्याग से घपला करना चाहिये। ईश्वर के पवित्र देवालय अर्थात् अपनी मानवी देह को कुछ भी प्रतिकार किये विना चुपचाप क्रूर मांस भक्षक भेड़ियों से खा लेने देना त्याग नहीं है। अपने को अन्याय और अत्याचार और घोर पाप के हवाले कर देने का तुम को क्या अधिकार है? यदि कोई स्त्री किसी निन्दनीय कर्म करने वाले जार मनुष्य को अपना पवित्र तन अर्पण कर दे, तो क्या यह त्याग कहा जा सकता है? कदापि नहीं। 'त्याग' का अर्थ है अपना सर्वस्व **सत्य** के समर्पण करना। यह अपना शरीर और यह सारा माल व असबाब ईश्वर का है। तुम तो केवल पहरेदार हो, इसलिये उसकी रक्षा करो और अपनी इस पवित्र धरोहर से पाप और अन्याय का मेल न होने दो। अपने को सत्य से भिन्न और पृथक समझना और फिर धर्म का नाम लेकर त्याग करना तो मानो उस वस्तु को अपनाना है जो अपनी नहीं है। यह तो अमानत में खयानत है। जो वस्तु अपनी नहीं है, क्या उसका दान करना पाप नहीं है? तुम सत्य रूपी जगमगाते हुये सूर्य्य होकर चमको। सत्य स्वरूप बन जाओ। केवल यही यथार्थ 'त्याग' है। ज़रा ठहरो, क्या सत्य स्वरूप बनना साक्षात् ईश्वरी ऐश्वर्य्य नहीं? ईश्वरत्व और त्याग पर्याय वाची शब्द हैं। अनुशीलन और आचरण

उसके वाह्य चिह्न हैं।

वैदिककाल में भी ऐसा नहीं माना जाता था कि कोई अहंकृति भाव से किया हुआ कर्मकाण्ड मुक्तिदाता हो सकता है। मुक्ति तो सदा केवल ज्ञान ही से प्राप्त हो सकती है। वर्तमान समय के वे कर्म भी जो केवल कर्तव्यता के नाम तले लाकर या स्वार्थता के सभ्य दास बन कर किये जाते हैं, या गड़बड़ सड़बड़ करके टाल दिये जाते हैं, मनुष्य को पाप और दुःख से मुक्ति नहीं दे सकते। चाहे वह पृथ्वी की सारी सम्पत्ति जमा कर ले, परन्तु अपने आत्मा को (सब का) आत्मा समझे बिना शान्ति कदापि नहीं उसे मिल सकती। संसार के सारे परिवर्तनों और स्थितियों में केवल एक ही उद्देश उपस्थित है, और वह आत्म-अनुभव है। जब तक किसी मनुष्य का जीवन कृत्रिमता, दृश्य और वाह्य रूपों पर ही टिका रहता अर्थात् जमा रहता है, तब तक निःसन्देह प्रत्येक नया परिवर्तन और सुधार केवल एक कूड़े करकट की नवीन तह (Stratum) ही बन जाता है, जिससे भूमि (सद्वस्तु) तो बिलकुल दिखाई ही नहीं देती। जब तक अपने को सम्पूर्ण स्वरूप भान करके पूर्ण अरोगिता अनुभव नहीं कर ली जाती, तब तक तुम्हारी सभ्यता का यह सारा दिखावा केवल दुःख पूर्ण देहभिमान के सूजे हुए घाव (ज़ख्म) को ढाँकने वाली एक पट्टी है। यह ज्ञान अर्थात् वेदों का ज्ञान-कांड ही सच्चा वेद है। हिन्दू धर्म के (षट्दर्शन कारों) और बौद्ध ग्रन्थकारों ने भी इसी का नाम 'श्रुति' रक्खा है। हे हिन्दू लोगो! इसी श्रुति का आश्रय लो। वर्तमान समय की आवश्यकताओं के अनुसार स्मृति और कर्म-कांड को बदल लो। इससे इतना ही नहीं होगा कि तुम अपने हिन्दूपने के अस्तित्व को बनाये

रख सकोगे, वरंच तुम्हारी व्याप्ति और वृद्धि भी होगी और तुम सम्पूर्ण जगत के सच्चे गुरू अथवा पथ-प्रदर्शक बन जावोगे। और इसी रीति से तुम्हारी पृथक रखने वाली जड़ता की बीमारी भी दूर हो जायगी और तुम में संयुक्त भाव पैदा करने वाली नवीनता भर जायगी। आत्मज्ञान के बिना कार्य्य करने वाले मनुष्य की अवस्था उस मनुष्य की सी होती है जो एक अँधेरी कोठरी में कार्य्य करता हो। कभी दिवाल से उसका सिर टकराता है, कभी टेबिल से घुटने फूटते हैं, उसे हर तरह की ठोकरें और चोटें खानी पड़ती हैं। जो मनुष्य प्रकाश में कार्य्य करता है उसे यह दुःख नहीं उठाना पड़ता। (ज्ञान-शून्य और ज्ञानवान मनुष्य के कार्य्य में अन्तर इतना है) कि ज्ञान-शून्य मनुष्य तो घोड़े की पूछ पकड़ कर सफर करता है और रास्ते भर लातें खाता है, और ज्ञानयुक्त मनुष्य आनन्द और सुगमता से घोड़े की पीठ पर बैठा हुआ चला जाता है। आत्म ज्ञानी मनुष्य को कोई भी कार्य्य कर्म रूप नहीं प्रतीत होता। फूलों की सुगंध उड़ाने में जितनी सुगमता ग्रीष्म ऋतु की मृदु पवन को होती है, उतनी ही सुगमता से स्थित-प्रज्ञ मनुष्य पर्वत जितने कामों को कर सकता है। शंकराचार्य्य जी का कथन है कि "आत्मज्ञानी मनुष्य कोई कर्म नहीं करता"। हाँ ऐसा ही है, परन्तु उस की दृष्टि से। क्योंकि ऐसा कोई भी कार्य्य नहीं है जो उसे कष्टदायक कर्म मालूम हो, उसे तो सब कुछ लीला, क्रीड़ा और आनन्द प्रतीत होता है। ऐसा कोई काम नहीं जो उसे अवश्य करना पड़े। वह तो अपनी स्थिति का राजा है। उसे कभी कष्ट नहीं होता। वह कभी उतावला भी नहीं होता। उसे तो सब काम किया हुआ सा दिखलाई देता है। न उसे उद्वेग होता

है और न दुःख (शोक)। वह सदा ताज़ा, धीर वा अचल और कर्म के ज्वर से मुक्त रहता है।

परन्तु क्या ऐसा मनुष्य आलसी और निरुद्योगी हो सकता है? यदि ऐसे आदमी को निकम्मा कह सकते हैं तो तुम प्रकृति को भी सुस्त और सूर्य को भी आलसी भले ही कह सकते हैं। नैष्कर्म (Non-work) के अद्भुत दूत स्वयं शंकराचार्य्य को देखिये। क्या तुम सारे इतिहास में एक भी ऐसा उदाहरण दे सकते हो जहां इतने थोड़े काल में एक व्यक्ति के द्वारा इतना अधिक काम हुआ हो? सैकड़ों ग्रन्थ रच डाले, संस्थायें (मठ) स्थापित कर दीं, राजा लोगों को स्वमतानुयायी बना लिया, सारे भारतखंड में बड़ी २ महा सभायें कर डालीं। जिस प्रकार किसी तारे से प्रकाश फैलता है, या पुष्प से सुगंध फैलती है, उसी तरह उन से कर्म का प्रवाह निकलता था।

राम इस महान ब्रह्म यज्ञ के बारे में थोड़ा सा कहे बिना इस विषय को समाप्त नहीं कर सकता। इस यज्ञ का करने वाला अत्मयाजी कहलाता है और इस आत्मयाजी को यह ब्रह्मयज्ञ मनुमहराज के कथनानुसार स्वराज्य अर्थात् आन्तरिक प्रतिभा का निजी सिंहासन (निजी साम्राज्य) प्राप्त कराता है। अपने सम्पूर्ण ममत्व, आसक्ति, आकांक्षायें, संन्यास, त्याग, मेरे और तेरे की कल्पना, राग द्वेष, मनो-विकार, दृष्टि, अनुग्रह, रीति वा शिष्टाचार, देह के सम्बन्धी, मन, नातेगाते, लेन देन, न्याय अन्याय, कुतर्की प्रश्न, समस्त नाम रूप, अधिकार और मोह, इत्यादि सब को ज्ञानाग्नि में हवन कर दो, ब्रह्मज्ञान की आग में इन को आहुति रूप से अर्पण कर दो। इन सब को धूप दीप बना कर 'तत्वमसि' के जलते हुये कुण्ड पर रख दो, और जब ये जलने लगें, तो

उन की सुगंध का आस्वादन लो।

अपने ब्रह्मत्व को प्रतिपादन करते हुए मोह और दौर्बल्य से ऊपर उठो। स्वात्मानिष्ठ मनुष्य को रास्ता देने के लिये संसार को एक ओर हट जाना पड़ेगा। या तो तुम जगत के प्रभु बनो, नहीं तो जगत तुम्हारे ऊपर अपना प्रभुत्व जमावेगा। संशय करनेवालों और अन्ध विश्वास करनेवालों के लिये कोई आशा नहीं हो सकती। केवल ऐसे ही लोग शपथ खाते हैं, क्योंकि वे अपने 'अहमस्मि' का नाम वृथा ही लेते हैं। क्या तुम्हें अपने ब्रह्मत्व के विषय में कुछ संशय है? ऐसे संशय करने की अपेक्षा तुम अपने हृदय में बन्दूक की गोली क्यों नहीं मार लेते? क्या तुम्हारा मन तुम्हें धोखा देता है? उसे उखाड़ डालो और निकाल कर फेंक दो। निर्भयता से, प्रसन्न चित्त होकर सत्य सागर में प्रवेश करो। क्या तुम डरते वा घबराते हो?

Are you afraid?
"Afraid of what?
Of god? Nonsense?
Of man? Cowardice;
Of the Elements? Dare them;
Of yourself? Know Thyself."
Say 'I am God' (Rama Truth)

किस से भय करते हो?
क्या परमेश्वर से? तब तो मूर्ख हो।
क्या मनुष्य से? तो कायर हो।
क्या (पँच) भूतों से? उनका सामना करो।
क्या अपने आप से? तो अपने आप को जानो।
कह दो कि "अहं ब्रह्मास्मि" मैं ब्रह्म हूं।

राम तीर्थ (स्वामी)

* ॐ *

एकता ।

(ता० २२-९-१९०५ को गोरखपुर में दिया हुआ व्याख्यान)

जुबान (जिह्वा) बोलती है, और कान सुनते हैं, ऐसा कहा करते हैं। परन्तु जुबान में बोलने की शक्ति कहां से आई, और कान में सुनने की ताकत कहां से आई ? एक ही रूह है, एक ही आत्मा है जो कान और जिह्वा को शक्ति देता है। कान को सुनने की शक्ति देता है, तो जुबान को बोलने की शक्ति देता है। आप लोग चाहे मानो चाहे न मानो किन्तु इस समय राम जो बोल रहा है, तो राम में बोलने वाला और आप में सुनने वाला वास्तव में एक ही है। जैसे जुबान और कान में एकही शक्ति है, इसी तरह बोलने वाले शरीर में और सुनने वाले शरीर में एक ही शक्ति है। वही बोल रही है, वही सुन रही है।

आप ही गाता हूं मैं अपने सुनाने के लिये।
कोई समझे या न समझे कुछ नहीं परवाह मुझे॥

यह व्याख्यान नहीं है, बल्कि जैसे कोई अपने मन में आप ही विचार करता है, इसी तरह अपने आप को अपने आप से स्वतः (Soliloquize) बोला जा रहा है। और इस को आप इस भाव के साथ सुनियेगा कि मानो आप स्वयं अपने मन में विचार कर रहे हैं और आप ही व्याख्यान दे रहे हैं। व्याख्यान आरम्भ होने से पहिले आप इस ध्यान में लीन हो जायें कि " इन समस्त देहों में एक ही तत्त्व है। परमेश्वर कह दो, खुदा कह दो, एकही तत्त्व वा वस्तु है, जो

इन सारे शरीरों में इस तरह व्याप रही है जैसे माला के दानों में धागा पुरोया रहता है।"

एकता और अद्वैत हम सुनते चले आरहे हैं, पुस्तकों में पढ़ते आये हैं, परन्तु आनन्द और फायदा या लाभ जभी हो सकता है कि जब हम को इस का सबूत (प्रमाण) देखने में मिले, जब प्रत्यक्ष सामने नज़र आने लग जाय। यह अद्वैत एक प्रकार से हम कह सकते हैं कि क़ानूने-कुद्रत (प्राकृत-नियम वा दैवी विधान) है। बल्कि सारी प्रकृति की जान अद्वैत है। जो राष्ट्र वा जातियां इस अद्वैत को व्यवहार में ला रही हैं, उन का बोल बाला होता है। जो मनुष्य इसे प्रत्यक्ष व्यवहार में लाता है, वही उन्नति को प्राप्त होता है। इस दैवी विधान (वा प्राकृत-नियम) को जो तोड़ता है, वह वैसा ही दुःख पावेगा जैसे आकर्षण के नियम (Law of gravitation) को तोड़ने वाला। जो मनुष्य आग को छूता है, वह जलने बिना नहीं रह सकता। मकान पर से कूदने वाले के हाथ पैर टूटे बिना नहीं बच सकते। इसी तरह जो इस प्राकृत-नियम (क़ानूने-कुद्रत) को तोड़ेगा, अपने आप को तोड़ेगा।

कहते हैं कि जिस समय अयोध्या जी से सीता जी को निकाल दिया, बनबास दिया गया, तो अयोध्या की यह दशा हो गई कि सारी प्रजा को रोना पड़ गया, महाराजा का शरीर छूट गया, रानियां विधवा हो गईं, हाहाकार का शोर मच गया और वावेला फैल गया। चौदह वर्ष तक सिंहासन खाली रहा और मातम तथा रोना धोना जारी रहा। और जिस समय श्री सीता जी को वापिस लाने के लिये श्री राम चन्द्र जी खड़े हो गये. तो उस समय कुद्रत की सारी ताकतें (अर्थात् समस्त प्राकृत-नियम) उन की सेवा शुश्रूषा के लिये हाथ जोड़े उपस्थित हो गईं। वन के जीव-जन्तु, बन्दर

और रीछ इत्यादि सब हाज़िर हो गये। जटायु और गरुड़ जो कि पक्षी थे, वे भी सहायतार्थ मौजूद हो गये। पत्थर भी कहने लगे कि आज तो हम पानी में नहीं डूबेंगे, आज हम सीता जी को वापिस लाने में मददगार होंगे, और अपना (पानी में डूबने का) धर्म भूल जावेंगे। पवन, जल, अपितु सारे भूत (तत्त्व) अपनी २ सेवा पूरी करने को उद्यत हो गये। कहा जाता है कि नन्ही (अति छोटी सी) गुलहरियां भी अपनी शक्ति के अनुसार मुंह में रेत के परमाणु भर भर कर समुद्र में डालने लगीं। देवी और देवता लोग भी सब के सब सीता जी को वापिस लाने में कटिबद्ध हो गये। सारी सृष्टि सेवका बन गई। बन्दर भी जो एक चञ्चल जाति से थे एक व्यूहाकार सेना के समान लड़ने में काम देने को खूब उद्यत हो गये।

प्यारे! अध्यात्म रामायण में सीता से अभिप्राय है ब्रह्म विद्या या अद्वैत का ज्ञान वा एकता का नियम। इस का तात्पर्य क्या है? कि जिस जिस जगह पर एकता का नियम तोड़ा जाता है, वहां वहां पर रोना पीटना और दान्त पीसना होता है। जहां पर एकता के नियम को व्यवहार में लाने की तैयारी होती है, वहां देवी देवता सब मदद करने को हाज़िर हो जाते हैं। देवता बलि देते हैं उस को जो एकता के क़ानून का वर्तने वाला (आमिल) होता है।

"सर्वेस्मै देवाः बलिमावहंति।

आप पूछेंगे कि एकता क्या है? राम पुराने तरीक़े से अद्वैत पर नहीं बोलेगा। रूह की और आत्मा की बात एक ओर रखिये। शरीर की दृष्टि से अद्वैत देखियेगा। और शरीर ही की नहीं बल्कि मन की दृष्टि से, बुद्धि की दृष्टि से अद्वैत ही अद्वैत, एकता ही एकता, फैल रही है।

तत्त्व वेता पाँच लतीफों में मनुष्य के चोले का विभाग करते हैं, जिसे हमारे हां पाँच कोष कहते हैं। (१) अन्नमय कोष (२) प्राणमय कोष, (३) मनोमय कोष, (४) विज्ञान मय कोष, (५) आनन्दमय कोष। अर्थात् (१) यह शरीर जो अन्न से बनता है जो अन्नाहार से बढ़ता है, और भोजन से फलता फूलता है, वह अन्नमय कोष कहलाता है, इसको स्थूल शरीर वा जाग्रतावस्था (जिस्मे-कसीफ वा आलमे-नासूत) भी कहते हैं। (२) जिससे जीवन स्थिर है, श्वास आता जाता है, उसको (Biological principle) लतीफा-ए-हैवानी या प्राणमय कोष कहते हैं। (३) मनोमय कोष और (४) विज्ञानमय कोष से अभिप्राय है ख्यालों का पुञ्ज, सोचने वा विचारने की शक्ति इत्यादि। प्राणमय कोष, मनोमय कोष और विज्ञानमय कोष इन तीनों को सूक्ष्म शरीर या स्वप्नावस्था (जिस्मे-लतीफ वा आलमे-मलकूत) कहते हैं। बेहोशी की अवस्था या सुषुप्ति को कारण शरीर (जबरूत या लतीफा-ए-सिर्री या जिस्मे-इल्लती) कहते हैं। इसके कारण से स्वप्नावस्था में नानाप्रकार की चीज़ें देखते हैं और जाग्रतावस्था में तरह २ के ख्याल दौड़ते हैं। तीसरा ढकना (५) आनन्दमयकोष (कारण शरीर) है। यह वह अवस्था है जो बचपन और बेहोशी में होती है। आप का आत्मा इन सब कोषों वा ढकनों से परे है। सब से ऊपर का ढकना अर्थात् स्थूल शरीर ओवरकोट के समान है। दूसरा ढकना सूक्ष्म शरीर अण्डरकोट है। तीसरा ढकना कारण शरीर मानो सब से नीचे की कमीज़ है। आपके आत्मा का विवेचन किया जाय तो सब शरीरों में एक ही आत्मा निकलता है। यह एक आत्मा ही परमात्मा है। आत्मा के विषय में कल विचार हो चुका है। यदि केवल वाह्य शरीर अर्थात् अन्नमय

कोष को विचार पूर्वक देखा जाय तो उसमें भी एकता ही एकता दिखाई देगी। हमारे स्थूल शरीर, अन्नमय कोष, एक दूसरे से ऐसा संबन्ध रखते हैं कि जैसे एक समुद्र में भिन्न२ तरंगे जो नाम रूप के नद (दरिया) में अथवा स्थूल तत्व के समुद्र में उठती हैं। वही जल जो अभी एक तरंग में था थोड़ी देर में दूसरी और तीसरी तरंग में प्रकट होता है।

एक खुर्दबीन (microscope) को लीजिये और उससे अपने हाथ को देखिये, आप को मालूम होगा कि हाथ पैर या शरीर के किसी अन्य भाग से छोटे परमाणु बाहिर निकल रहे हैं, परमाणुओं की एक प्रकार की घटा सी आ रही हैं जो आपके हाथ या दूसरे दृष्ट अंग पर छा रही है। ये परमाणु प्रत्येक के शरीर से निकल रहे हैं। यही कारण है कि जब एक मनुष्य विषूचिका (हैज़ा) या महामारी (वबा) में या स्पर्श जनक रोग (contagion) में ग्रस्त होता है, तो समीप वालों को रोग लग जाता है। जो परमाणु बाहिर निकल रहे हैं, वे वायु में फैल रहे हैं, वे दूसरे लोगों के शरीर में प्रवेश करते हैं। अगर ऐसा न होता तो स्पर्शजन्य रोग का फैलना असम्भव होता। विज्ञान (Science) ने बतलाया है कि यह गंध परमाणुओं से जो कि बाहिर निकलते हैं, उन परमाणुओं के बाहिर निकलने से प्रकट होते हैं। हमारे शास्त्र के शब्दों में गंध पृथिवी तत्व का गुण है, अर्थात् स्थूल अंगों (वा परमाणुओं) पर निर्भर है। कुछ कुछ गुण कुछ कुछ प्राणियों में मनुष्यों की अपेक्षा अधिक पाये जाते हैं। घ्राण इन्द्रिय का सम्बन्ध सूंघने की नाड़ी (olifactory nerve) से है। यह नाड़ी मनुष्य की अपेक्षा कुत्ते में अधिक विकसित रूप से है। कुत्ता अपने स्वामी या अपने घर का पता मीलों की दूरी से केवल बू के सूंघ लेने से लगा लेता है। और ऐसा होना

उसी दशा में सम्भव है कि जब मनुष्य के शरीर से परमाणु बाहिर निकलते हों। ये परमाणु एक के देह से दूसरे और तीसरे के देह तक आते रहते हैं। यदि एक शरीर ठीक और निरोग है, तो उस से अरोगता फैलेगी, और रोगी है तो रोग फैलेगा। पस जो मनुष्य अपनी अरोगता का ख्याल नहीं रखता, वह न केवल अपने को रोगी बना कर दुःख पहुंचाता है बल्कि दूसरे मनुष्यों, अपनी जाति (सोसाइटी) और राष्ट्र को भी रोग के खतरे में डाल रहा है और दुःख दे रहा है। इसलिये न केवल अपने लिये बल्कि जाति वा समाज के लिये अपने शरीर को निरोग रखना उचित है। आप लोग जो श्वास ले रहे हैं, उस से आक्सीजन (Oxigen) वायु भीतर जाती है, और उस के कारण शरीर के भीतर आग जलती रहती है, गरमी कायम (बनी) रहती है, रुधिर का वेग एक समान बना रहता है। जिस समय यह वायु अन्दर गई, उसी क्षण जल उठी, और कारबन डाय ऑक्सा-इट (Carbandioxide) के रूप में बाहिर लौट आई, और वह फिर बूटों (वृक्षों) का आहार हुई। पेड़ों ने उसको अपने में जज़्ब किया (लीन किया) और अपने तन से उसे अक्सीजन (Oxigen) के रूप में बाहिर निकाला। और वह फिर मनुष्यों के प्राण बनाये रखने के काम में लाई गई। यह बात इस तथ्य को सिद्ध करती है कि न केवल परस्पर मनुष्यों के शरीरों में एकता है बल्कि वनस्पति और मनुष्यों के तन में भी एकता ही एकता का डँका बज रहा है। इस से अतिरिक्त साइंस आफ बैक्ट्र्यालोजी (Science of Bact-eriology) से सिद्ध है कि जिन कीड़ों के कारण पशुओं में बीमारी (रोगता) उत्पन्न होती है, उन ही कीड़ों के कारण प्रायः मनुष्यों में भी बीमारी होती है। यदि

पशुओं और मनुष्यों के देहों में समानता न होती, तो यह तथ्य कब सम्भव हो सकता था। इस के अतिरिक्त वैदिक शास्त्र की सफलता भी भिन्न २ मनुष्यों के शरीर की एकता सिद्ध करती है, क्योंकि जो औषधि एक मनुष्य को लाभकारी होती है, वही औषधि दूसरे मनुष्य को उसी रोग में मुफीद होती है। यदि एकता न होती, तो प्रत्येक मनुष्य के लिये भिन्न २ वैदिक शास्त्र बनाने की ज़रूरत आन होती।

प्राणमयकोष की दृष्टि से देखिये, साइकोलोजी (Psychology) का प्रोफैसर जेम्स (Professor James) लिखता है कि हमारे काम जितने होते हैं, वह सब सज्जैशन (Suggestions, प्रेरणा वा प्रभाव) से होते हैं। हम को मालूम नहीं कि हम क्योंकर काम करते हैं। हमारे बहुधा काम अपने संकल्पों और अपनी इच्छा से नहीं होते, बल्कि इस तरह होते हैं जैसे एक बन्दर औरों को करता हुआ देखकर स्वयं भी उसी तरह करने लग जाता है। इसी प्रकार अन्य पशुओं की दशा देखी गयी है। पर्वतों पर तजारत इस तरह से होती है कि बकड़ियों और भेड़ों पर थोड़ी थोड़ी जिन्स लाद कर लोग माल ले जाते हैं। गंगोत्री के रास्ते में भैरों घाटी के पड़ाओ पर एक बड़ा ऊँचा लोहे का पुल (hanging bridge) था उस पुल पर एक ब्योपारी (सौदागर) बहुत सी भेड़ और बकड़ियों पर सांबर (निमक) लाद कर ले जाने लगा। जब बकड़ियां पुल पर गुज़रने लगीं, एक बकड़ी दैवयोग (इत्तफाक) से नदी में गिर पड़ी, दूसरी भी उस की देखा देखी गिरी, तीसरी भी गिरी। माल के मालिक ने हरचन्द रोकना चाहा, मगर वह न रुकी, एक के पीछे गिरती चली गई और आश्वरकार (अन्ततः) सब की सब गिर गई और गंगा में डूब गई।

एक के ख्याल का प्रभाव दूसरे के ख्याल पर ख्वाह मख्वाह होता है। इस पर यदि विचारा जाय कि एक के ख्याल का प्रभाव दूसरे पर होने का क्या कारण है, तो मालूम होगा कि सूक्ष्म शरीर के वह परमाणु जिन का नाम ख्याल है भिन्न २ शरीरों के एक समान हैं। और इस कारण से सूक्ष्म शरीरों में एकता मौजूद है। और यह बात उसी हालत में सम्भव है कि जब आप के मनों में एकता हो।

जिन लोगों ने विज्ञान शास्त्र (Science) देखा है, वह इस को समझ सकते हैं कि इनर्जी (energy) अर्थात् शक्ति किसी प्रकार की नष्ट नहीं हो सकती है। यह सम्भव है कि वह एक रूप से दूसरे रूप में बदल जावे। फ्रांस (France) में जब (रेन आफ टैरर-reign of terror) पीड़ा वा ज़ुल्म का राज्य आया, तो सब लोगों के चित्त में यह ख्याल था कि यह सूरत पलटा खावे, यह हालत बदले। इस बगावत (rebellion रीबिलियन) को, इस अबतरी (anarchy अनारकी) को उचित प्रबन्ध का रूप प्राप्त हो। मगर सर्व साधारण में कोई ऐसा नहीं था जो खड़ा होकर सब लोगों को प्रबन्ध के रूप में ले आवे। प्रत्येक स्त्री पुरुष की यह इच्छा हो रही थी, मगर व्यक्ति व्यक्ति करके कोई एक इस योग्य नहीं था कि कुछ कर सके। आखरकार एक मनुष्य निकल आया उन्हीं में से, अर्थात् साधारण पट्टी (plevion rank-पलेवियन रैंक) में से निकला। नेपोलियन (Nepoli-an) जिस समय वैभव को प्राप्त हुआ, उस समय उस की अवस्था यह थी कि शत्रु के हज़ार आदमी उसके पकड़ने के लिये गये, वह अकेला उन सब के आगे खड़ा हो गया, और ऊन्ची आवाज़ से बोला "अवांट (avaunt)" अर्थात् खड़े हो जाओ। उन हज़ारों के दिलों में ऐसा भय छा गया

कि सब खड़े हो गये। यह वास्तव में उस अकेले की शक्ति नहीं थी बल्कि हज़ारों मनुष्यों के ख्यालात की शक्ति का पुञ्ज था जो उसके दिल में मौजूद था।

ॐ!   ॐ!!   ॐ!!!

शान्ति का उपाय ।

(सितम्बर सन १९०५ को बारहबंकी में दिया हुआ व्याख्यान)

(श्रीयुत शंकरसहाय कृत भूमिका ।)

हुई लाज़म * फलक पर आज ताज़ीमे-सभा की ।
मुअद्दब‡ हो के ऊपर से कमर अपनी झुका ली ॥

आज तो ग़जब ही खुशी का दिन है और बड़े आनन्द का समय है कि जंगल में मंगल हो रहे हैं । वृक्ष प्रणाम के लिये सिर झुकाये हैं और मौन दशा में खड़े होकर मौन आसन जमाये हैं । और दिन का चान्दना भी ऐसे समय की ओर झुक रहा है कि मौन दशा प्राप्त हो, मानो आसन मार कर एकान्त में बैठने की तैयारी कर रहा है । बारहबंकी के प्रत्येक व्यक्ति के हृदय कमल स्वयं खिले हुए हैं, और ऐसे आनन्द में भरे हुए जंगल की ओर दौरे जा रहे हैं कि दिन की मेहनत और मुशक्क़त (श्रम और परिश्रम) जो उन्हों ने की है और तरह २ के कष्ट जो उठाये हैं, उसे थोड़ी देर आराम करके दूर करना भी भूल गये हैं । क्यों न हो इश्तयाक़ (पियासा वा जिज्ञासा) इसी का नाम है, और प्रेम की यही उपमा है, वहां पहुंच कर देखते क्या हैं कि परमहंस श्री १०८ स्वामी राम तीर्थ जी महाराज अपना अमृत रूपी व्याख्यान शान्ति विषय पर सब लोगों को कानों के द्वारा पिलाने को तैयार हैं । श्री स्वामी जी महाराज अपने लम्बे चौड़े सफर (यात्रा)—अमरीका, जापान इत्यादि—से वापिस आकर इस छोटे से

---

* आकाश ‡ सन्मान पूर्वक झुककर ।

ज़िला बारहबंकी में पधारे हैं और लोगों को कृतार्थ किया है। आप ने मन्दिर नागेश्वर नाथ के स्थान पर सायं ६ बजे से अपना व्याख्यान आरम्भ किया और ६ बजे रात्रि तक लगातार आप व्याख्यान देते रहे।

कार्यारम्भ।

श्रीयुत पं० परमेश्वरी दयाल वकील हाईकोर्ट के प्रस्ताव पर और डाक्टर ओहदे दार साहिब सिवल सरजन के समर्थन पर नवाब महम्मद अज़ीम खाँ साहिब जो साहिब डिपुटी कमीशनर बारहबंकी के स्थानापन्न थे, इस सभा के सभापति चुने गये।

सभापति महोदय ने आरम्भ में निम्न लिखित भाषण दिया। "उपस्थित गण! मैं श्री स्वामी राम तीर्थ जी महाराज को आप सब भद्र पुरुषों की सेवा में इन्ट्रोडयूस करता हूँ अर्थात् उनका परिचय देता हूँ। यह बड़े भारी विद्वान और विशाल चित्त पुरुष हैं। यह बारहबंकी का सौभाग्य है कि आप लोगों को उन के व्याख्यान सुनने का अवसर प्राप्त हुआ है। क्योंकि स्वामी जी महाराज को किसी मत मतांतर विशेष से सम्बन्ध नहीं है, अत एव मैं आशा करता हूँ कि आप का भाषण सर्व-प्रिय और प्रशंसनीय होगा। और आप सब लोग सुन कर खुश होंगे और लाभ उठायेंगे।

स्वामी राम का भाषण।

राम अपने दिल की तार हिलायगा, जिन लोगों के दिल में वही तार होगी हिल जायगी। व्याख्यान आरम्भ करने से पहिले वा भाषण आरम्भ होने से पूर्व आप अपने दिल को एकाग्र कीजिये। और इसके लिये यह ख्याल चित्त में रखियेगा कि

ठण्डक भरी है दिल में आनन्द बह रहा है।
अमृत बरस रहा है। झिम ! झिम !! झिम !!!
फैली है सुबहे-*शादी क्या चैन की घड़ी है।
सुख के छुटे फव्वारे †फरहत चटक रही है॥
क्या ‡नूर की झड़ी है, झिम ! झिम !! झिम!!!
+शबनम के दल ने चाहा, पामाल करदे गुलको।
सब फिक्र मिलके आये कि निढाल करदें दिलको॥
आया ×सबा का झोंका, वह सबाये-१रोशनी का।
झड़ती है शबनमे-ग़म, झिम ! झिम !! झिम !!!

चारों ओर से फरहत ही फरहत चटक रही है।
चारों ओर खुदा का नूर ही झलक रहा है॥

कल रात को यह निश्चय तय पाया था कि आज का विषय होना चाहिये 'शान्ति का उपाय', अर्थात् चित्त की शान्ति का साधन, means to the peace of the mind.

सारा संसार चित्त की शान्ति पाने की इच्छा कर रहा है, और समस्त जगत के लोग परिश्रम कर रहे हैं कि आनन्द प्राप्त हो। दुन्या क्या है? वह एक पाठशाला या स्कूल है कि जहां हम को यह प्रश्न हल करना है, यह सिद्धान्त निश्चय करना है कि शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है। प्रायः लोगों के परिश्रम पहिले पहिले ग़लत मालूम होते हैं। जब गणित का कोई प्रश्न हल किया जाय, तो पहिले कई बार गलतियां होती हैं, और समझने या हल करने में कठिनाईयां उपस्थित होती हैं, पर बाद को ठीक हो जाता

*आनन्द की प्रातः †खुशी ‡प्रकाश +आस ×पूर्वा वायु १प्रकाश रूपी वायु, अभिप्राय, सूर्य।

है। इसी प्रकार प्रायः लोगों के भ्रम इस शान्ति के प्रश्न को हल करने में गलतियां करते हैं, और फिर ठीक (दुरुस्त) हो जाते हैं। बहुतों ने इस में गलतियां खाई हैं और खा रहे हैं।

राम संसार के अनुभव से साक्षी देता है कि जगत् के

शान्ति किस में है? विषयों में सम्भव नहीं है कि हम को आनन्द मिले। जगत की वस्तुएं, संसार के पदार्थ हम को चित्त की शान्ति नहीं दे सकते हैं। देखो, थोड़ी देर के लिये फरहत (खुशी) मालूम होती है जब कि हम पुष्प को हाथ में लेते हैं। पर पुष्प के मलते ही सुगन्धि जब दूर होती है तो फिर वैसे का वैसा (अशान्त) अपने को पाते हैं। लोगों ने धन से यत्न किया कि आनन्द मिले, पर नहीं मिला। स्वयं आप जब अनुभव करके देखोगे, तब जाकर आप समझोगे और जानोगे कि राम ठीक कहता है। राम आप के सामने वह नतीजा पेश करता है जो उसने स्वयं (निज अनुभव से) निकाला है। 'राम' इस शरीर का नाम है। कुछ लोगों ने इस प्रश्न के हल करने में यत्न किया है, मगर आधा या पौना भाग हल कर सके हैं. पर पूरा २ हल नहीं कर सके। केवल (morality) मोरेलेटी (सभ्यता) की ओर चले हुए हैं। इससे यह तो ज़रूर है कि हम ठीक चल रहे हैं, पर देहिली अभी बहुत दूर है, इसके विषय में कुछ दूर आगे चलकर कहा जायगा, या देर में। परन्तु इस ईश्वरी नियम का तोड़ने वाला फौरन ही चित्त की शान्ति को भंग कर बैठता है। पाप की अग्नि दिल को जलाना शुरू कर देती है। वह व्यक्ति सफलता का द्वार बंद कर डालता है। सरकारी दण्ड इस कदर शीघ्र नहीं मिल सकता जितना कि इस नियम भङ्ग से मिलता है।

नैपोलियन इतना बड़ा बलवान् और प्रसिद्ध योधा था

कि सारा संसार उस से थर्राता था। देखो, जब तक यह व्यक्ति पवित्र चित्त वा पवित्र आचरण रहा, विजय पर विजय प्राप्त करता रहा। उसकी जीविनी से स्पष्ट है कि वाटरलू के युद्ध में वह पहिली ही रात्रि से अपने आप को विषय वासना के कूप (गढ़े) में गिरा चुका था। उसकी भीतरी पवित्रता भंग हो चुकी थी, उसकी शक्ति जा चुकी थी और वह एक चन्द्रवती सुन्दरी के ख्याल में आसक्त हो चुका था।

पृथिवीराज रणभूमि को चलते समय अपनी कमर उस रानी से कसवा कर आया था जिसका चारित्र बल व सतीत्व नष्ट हो चुका था। उसको विजय प्राप्ति, कहो, कहां से होती? यह अति सुन्दर शूरवीर (अभिमन्यु कुमार) इसी कारण से कुरुक्षेत्रमें पराजय को प्राप्त हुआ था और तब से शूरवीरों का वंश तक लुप्त होगया।

टैनीसन (Tennyson) कहता है कि।

"दस ज्वानों की है मुझ में हिम्मत।
क्योंकि मेरे दिल में है इफ्फत अरु अस्मत्"॥

हिन्दुशास्त्र भी बराबर यही बतला रहे हैं। महावीर जी की मूर्ति हिन्दुओं को क्या उपदेश देती है? वह यह उपदेश देती है कि समस्त संसार में जो व्यक्ति अपने काम में सच्चे हैं, वे ऐसे ही होते हैं। देखो, यद्यपि वह (महावीर जी) बन्दर हैं, मगर उन का चित्त शुद्ध है, उन के चित्त में राम राम से अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है। और किसी से वह काम नहीं हो सकता कि जो महावीर ने किया।

मेघनाथ को कोई बारह वर्ष तक न मार सका, और जो काम स्वयं राम भगवान् से न हो सका, वह काम शुद्ध चरित्र जितेन्द्रीय लक्ष्मण जी ने कर दिखाया।

कहते हैं कि भीष्म पितामह मृत्यु पर विजय पा चुके

थे। उस का कारण क्या था? पवित्रता और इन्द्रिय-निग्रह था।

राम (वक्ता) जब पर्वतों पर दारजलिंग में था, उस ने अपने नेत्रों से देखा कि एक व्यक्ति आया, उस ने एक गुलाबी फूल तोड़ा और नाक के पास ले गया। ज्योंहि वह उसे नाक के पास ले गया, उस में एक शहद की मक्खी थी, उस ने उस की नाक की नोक पर काट खाया, और वह व्यक्ति चिल्लाने लगा।

इसी प्रकार आप मानों चाहे न मानो, यह दैवी विधान (प्राकृत्य-नियम) है और जिस को कोई भी नहीं तोड़ सकता है कि "जो व्यक्ति अपने दिल में अपवित्र विचार और बुरे संस्कारों को स्थान देगा, वह अवश्य गिरेगा और किसी प्रकार से संभव नहीं है कि शहद की मक्खी से काटे जाने के समान वह दुन्या के कष्ट और दुःख भोगने से बच सके"।

वह व्यक्ति जिस को संसार के विषय और स्वाद नहीं हिला सकते, वह निःसन्देह सारे संसार को हिला सकेगा। पवित्र आचरण, जितेन्द्रीय और शुद्ध विचारों से भरे हुए और पूर्ण वा सच्चे निश्चय वाले का दिल और देह प्रकाश रूप हो जाते हैं। और ईश्वर का तेज उस में से चमकने लगता है। ॐ।

एक फकीर (साधु) का एक चेला था। वह भीख मांगने जाया करता था। एक दिन वह राजा के महल की ओर चला गया। रानी ने देखा कि एक सुन्दर मुख संन्यासी आ रहा है। रानी का दिल उस संन्यासी के मुखड़े को देख कर बिगड़ गया। रानी उसे झरोखा से देख कर नीचे उतर

आई और उसे भिक्षा दी, और भिक्षा देते समय वह कुछ जिह्वा से भी कह गई। वह क्या कह गई? वह यह कह गई कि तुम्हारे नेत्र तो क़यामत ढाते हैं। साधु ने भीख तो ले ली, पर उसे खाया नहीं। बल्कि उसे नदी में डाल दिया। दूसरे दिन वह चेला (साधु) एक लोहे की सिलाख से अपने नेत्रों को चक्षु के भीतर से निकाल कर और उन्हें एक कपड़े में बांध कर लाठी टेकते टेकते उस रानी के महल पर आया। रानी के दिल में यह बदनीयती (बुरी वासना) भरी हुई थी, कि मैं उसे भीतर ले जाऊँगी। जब वह उस (साधु) के पास आई, तो साधु ने वह रुमाल जिस में उस के नेत्र बंधे हुए थे, निकाल कर रानी को दे दिया और कहा कि हे रानी! अगर मेरे नेत्र क़यामत (प्रलय) ढाते हैं, तो, ले, ये तेरी भेंट हैं। शारीरिक नेत्र की ज्योति यदि जाये तो निःशंक चली जाय, मगर मेरी आत्म-ज्योति बनी रहे। उस (आत्म-ज्योति) पर तू हाथ मत डाल। रानी इस दृश्य को देख कर हक्की बक्की सी रह गई और मौन दशा को प्राप्त हो गई। आगे जो कुछ हुआ उस के वर्णन की आवश्यकता नहीं।

जिन्हों ने संसार को हिला दिया वह उस साधु तथा उस के साथी के समान थे। बुद्ध भगवान् की पवित्रता जगत् विख्यात है। आज भी समस्त जगत् का तीसरा भाग बौद्ध मत का अनुयायी है। हमारा अभिप्राय इस से केवल यह है कि जिन के चित्त में पवित्रता और शुद्धिता भरी है और सच्चा निश्चय जिन के भीतर जम गया है, वह सारे संसार को जीतता चला जावेगा। इस में कुछ संदेह नहीं है।

दूसरा उपाय वा साधन शान्ति का क्या है? शास्त्रों

शास्त्राध्ययन शान्तिका दूसरा साधन है।

का अध्ययन वा ग्रन्थावलोकन। जिन पुस्तकों को पढ़ते हुए आनन्द होता है, प्रसन्नता प्राप्त होती है, वह पुस्तकें भिन्न २ व्यक्तियों के लिये भिन्न २ हैं, अर्थात् कुछ के लिये और हैं और अन्य के लिये कुछ और। अर्थात् ईसाइयों के लिये अञ्जील इत्यादि, मुसल्मानों के लिये कुरान इत्यादि, और हिन्दुओं के लिये अवधूत गीता वा योगवासिष्ट इत्यादि, मुसल्मान वा अन्य धर्म के अद्वैत वादियों के लिये दीवान-शमस तब्रेज़, मौलाना रूम, दीवान वली राम, उपनिषदें, और उर्दू में रिसाला अलिफ हैं। इन को एकान्त में बैठ कर दत्त चित्त से पढ़िये। एकान्त में बैठ कर जहां पर पढ़ते पढ़ते रोंगटे खड़े हो गये हैं, या जहां पर आनन्द प्राप्त होगया है, दिल में हर्ष भर गया है; उस दशा को किञ्चित् जारी तो रक्खो। फिर देखो कि कैसी आनन्दकी घटा प्राप्त होती है। परमेश्वर पर जिस तरह हिन्दु लोग ॐ के नाम से ओम् २ करते हुए निश्चय को प्राप्त होते हैं, उसी तरह मुसल्मान लोग अल्लाह के नाम से प्राप्त होते हैं। ॐ के वही अर्थ हैं जो कि अल्लाह के। एक वही मार्ग है जो दिल में भर गया है।

पुस्तकों का अध्ययन ऐसा है जैसा गुल्ली डँडा का खेल, कि पहिले गुल्ली को डंडा से धीमे से चोट लगाकर फिर उस पर दूसरा डंडा ऐसे ज़ोर से लगाया जाता है कि वह उस गुल्ली को दूर तक पहुँचा देता है। इसी प्रकार अध्ययन करते करते मन को ऐसा दूर तक पहुंचा दो कि साक्षात्कार हो जावे। परिणाम यह हो कि सारा मन उसी में युक्त रहे।

गले लिपट के जो सोया वह रात को गुलरू।
तो भीनी भीनी महीनों रही है बू बाकी॥

इस प्रकार की और बहुत सी बातें कही जा सकती हैं।

यदि हम लोगों में से कोई एक मनुष्य कुछ कर गया है, तो बाक़ी सब कर सकते हैं, यदि उन को यह मालूम हो जाय कि वह क्योंकर सफल हुआ था। वह भेद वा रहस्य यह है कि तुम कहते हो, हमें समय नहीं मिलता है, तुम इतने कंगाल (ग़रीब) हो गये हो समय के। शोक है कि जो वस्तु, जो पदार्थ तुम्हारे पास बहुतायत से मौजूद है, उस से तुम कङ्गाल होने का इक़ार करते हो।

अब हम कर्म की परिभाषा अध्यात्म शास्त्र से करते हैं।

कर्म की परिभाषा

कर्म जो हम करते हैं, वह कर्म नहीं है। तुम को मालूम नहीं कि कर्म क्या है। यह शब्द अब वाक्य रचना रूप हो गया है, और इस के अर्थ ग़लत निकाले जाते हैं। काम वह है जिस को करते हुए आप का चित्त और आप के चित्त का ध्यान उसी प्यारे दिलबर से नियुक्त रहे, उस परमेश्वर की ओर लौ लगी रहे। बस, जब ध्यान नहीं है, तो वह काम भी नहीं है। इस पर एक दृष्टान्त है। एक फौज का सिपाही तीस वर्ष नौकरी करने के बाद पैन्शन ले कर अपने घर आया। एक दिन बाज़ार से वह कुछ दूध लेकर घर जा रहा था। किसी ने बाज़ार में मज़ाक (हंसी) देखने के लिये उस के पीछे खड़े होकर ऊँचे स्वर से कह दियाः-"attention"-अटेन्शन (सावधान)। क्योंकि इस सपाही का स्वभाव था, क्योंकि तीस वर्ष तक वह क़वायद कर चुका था, अत एव ज्यों ही उस ने शब्द attention (सावधान) सुना, उस के हाथ सीधे हो गये और दूध का लोटा उस के हाथ से गिर गया। बाज़ार के लोग हंसने लगे, ठट्ठा करने लगे। क्या यह काम है? नहीं, यह काम नहीं है। यह वर्क work नहीं है, यह कार्य नहीं है। अगर इसी से अभिप्राय कर्म का है, तो श्वांस लेना भी

एक कर्म है, रगों और नसों में खून चलना भी एक कर्म है। नहीं, यह काम नहीं है। वह काम जिस में मन न लगा हो. वह काम नहीं है। अध्यात्म शास्त्र कहता है कि यदि किसी काम को करते हुए मन उस में लगा रहे तो वह काम है। अगर एक समय कुछ काम करते हुए मन से एक ऐसी हरकत (चेष्टा) हो जाय कि जो उस काम के योग्य नहीं है, जो उस काम से संबन्ध नहीं रखती है, तो वह काम बिगड़ जायगा। बड़े बड़े काम करने वाले भी निकम्मे रहते हैं। मगर ज़रा ख्याल तो कीजिये कि जिन लोगों ने मन से और चित्त (ध्यान) से काम किया है, वे मनुष्य बुद्धिमान कहलाते हैं, और उन्हों ने सारी दुनिया में हल चल डाल दी है। न्योंटन (newton) एकाग्रता से काम करता था, देखो, उस ने दुनिया में क्या क्या काम कर डाला। कवि का वह काम अर्थात् वह कविता जिस में उस का चित्त लगा है, जिस में उस का ध्यान युक्त वा एकाग्र है,वह काम अर्थात् वह कविता समग्र संसार में हल चल डाल देते हैं। इसी प्रकार गणित शास्त्र का वेत्ता जब तक मन को एकाग्र न कर लेगा, वह कोई प्रश्न हल नहीं कर सकता है। अब आप यह फरमाइयेगा कि क्या इस में कुछ संशय है कि जब अत्यन्त एकाग्र चित्त हो जाता है, तब उसका काम सारे संसार को रोशन कर देता है, और इस के विरुद्ध होने से अर्थात् विना एकाग्रता से काम करने में लज्जा और बदनामी मिलती है।

मन के खाली भाग में ईश्वर का आनन्द भरना शान्ति का तीसरा साधन और मुख्य साधन है।

मनुष्य को देखना चाहिये कि काम को करते समय उन के शरीर का एक भाग खाली रहता है, वह भाग जो खाली रहता है उस को अगर पूर्ण करे रक्खो तो आप का जीवन उसी प्रकार का हो सकता है

कि जैसे बड़े बड़े आली दमाग वाले (महान बुद्धिशाली) का हो चुका है। सैर करते हुए, खाना (भोजन) बनाते समय आप के मन का कितना भाग बेकार वा खाली रहता है। विद्यार्थी तो खाने के समय भी कुछ थोड़ा बहुत विचार मन में जारी रखता है। यदि पूरी तरह से विचार जारी रक्खे तो उचित भी है। राम अपना अनुभव वर्णन करता है कि स्नान करते और चलते समय भी प्रायः गणित शास्त्र के प्रश्नों को हल किया करता था, और कभी २ किसी अन्य प्रश्न को भी हल करता था। चित्त की शान्ति के लिये मन के खाली भाग को ईश्वर से भर रखना वह किसी कठिनाई के दूर करने मे तुम्हें किंचित हानिकारक न होगा। परमात्मा को अपने दिल में रखने के अर्थ क्या हैं, वह यह हैं कि अन्तःकरण में आनन्द स्वरूप सच्चिदानन्द ब्रह्म को स्थिर कीजिये, और प्रसन्नता को दिल में भरिये। परमेश्वर चूंकि आनन्द है, इस लिये जो मनुष्य आनन्द में रहता है, वह ईश्वर में रहता है और ईश्वर उस में रहता है। क्योंकि परमातमा प्रसन्नता है, इस लिये जो मनुष्य चित्त की प्रसन्नता रखेगा, वह परमात्मा को साथ रखेगा, और परमात्मा प्रसन्नता के रूप में होकर उस के दिल में रहेगा। प्रसन्न और मस्त चित्त को जो आनन्द प्राप्त होता है, वह आनन्द न धन से मिल सकता है, न स्त्री से, और न दुन्या की कोई और वस्तु उसे दे सकता है।

आनन्द, प्रसन्नता वा मस्ती हरेक मनुष्य में मौजूद है।

जब फ़ौजें लड़ने को जाती हैं, तो बहुत सिपाहियों को मदरा पिला देते हैं, और मदरा पी कर वह मस्त हो जाते हैं। ऐसे सिपाही मरने और जीने को नहीं डरते। परन्तु मस्ती उन को दे देना और मस्ती देकर यह ख्याल

करना कि उन में यह मस्ती स्थिर रहेगी, गलत है; किन्तु निजानन्द द्वारा मस्ती देना ठीक है। अर्थात् मस्ती तो दी जाय, पर उचित रीति से दी जाय, और उचित उपाय से ही देना चाहिये। क्या आप का स्वरूप, आप का आत्मा प्रसन्नता वा मस्ती नहीं है? वह स्वयं मस्ती है और हर मनुष्य के अन्तःकरण में, चाहे वह हिन्दु हो, चाहे मुसल्मान हो, चाहे ईसाई हो, मस्ती मौजूद है, प्रसन्नता स्थित है।

एक मनुष्य भंग पी रहा था। उस के पास एक अन्य मनुष्य आया। उसने उसको भी एक प्याला भंग का दिया। उस मनुष्य ने उस भंग के प्याले को पहिले कान से लगाया। प्याला देने वाले ने उस से पूछा कि यह क्या करते हो? उसने उत्तर दिया कि मैं भंग से यह बात पूछता था कि ऐ भंग! तू कैसी है कि जो व्यक्ति तुझे पी लेता है, मस्त बन जाता है? तू तो निरी मस्त वा उन्मत बना देने वाली है। प्याले की भंग ने उत्तर दिया कि मैं उन्मत नहीं हूं, यदि मैं उन्मत होती, तो क्यों न प्याला ही उन्मत हो गया? वह कपड़ा जिस से मुझे छाना है उन्मत क्यों न हो गया? वह कूण्डी और डंडा जिस से मैं पीसी गई मतवाल वा उन्मत क्यों न हो गया? मतवाल वा उन्मत बनाने वाला अथवा नशा का चशमा (निर्झर) तो तू स्वयं है, और दुन्या में बदनाम मुझे कर रहा है। शराब को मस्त करने वाले हम हैं। शराब हम को मस्त करने वाली कहां?

एक शराब पीने वाले ने एक मेले में शराब वाले की दुकान पर जा कर कहा कि एक पैसे की शराब दे दो। दुकान्दार ने कहा कि एक पैसा का खून नाहक़ (व्यर्थ) करते हो, इसको किसी और काम में खर्च कर लो। उसने कहा कि एक पैसा की दे दो, मैं उसे मूंछोंमें लगा लूंगा, जिस

से लोग ख्याल करें और जानें कि मैं शराब पिये हुए हूं। और ऐसे ही हुआ। मस्ती तो शरीर और मन के बल से आप के भीतर मौजूद है। आप अपनी मस्ती को अपने भीतर से निकालें और उस के निकालने का उपाय करें। वह उपाय क्या है? वह उपाय यह है:— प्रथम तो प्रातः काल पुस्तकों का अध्ययन वा अभ्यास करो। उसके बाद सारा दिन जो दुन्या का काम करते हो वह करते रहो, पर प्रातः काल वाली प्रसन्नता, प्रातः काल के आनन्द का ख्याल रक्खो और वह ख्याल सारा दिन बना रहे। उस प्रसन्नता के ख्याल करने और उस आनन्द वस्तु के सोचने में देर मत लगा करे। कोई ऐसा पद्य या वाक्य जिह्वा पर रहना चाहिये, "अहा हा हा, हाथ हो तो काममें और दिल हो राम में"। राम ऐसी बात न कहेगा जो उस के अनुभव में न आई हो, बल्कि राम अपने आज़माये हुए (अपने पर बीते हुए) वाक्यात वा अनुभव आप के सामने पेश करता है। मन को ऐसा सिधाना चाहिये कि जैसे लोग बाज़ पक्षी को सिखला लेते हैं कि वह अपने स्वामी के हाथ या उस के सेवकों के हाथ पर, जो उसका निरीक्षण करते हैं, बैठा रहता है और जब अवसर पाता है तो हवा में दूर जाकर शिकार पकड़ लाता है, और फिर वापिस आकर उसी हाथ पर बैठ जाता है। इसी तरह तुमको उचित है कि अपने मन को काम की ओर जाने दो, पर जब एक पल वा क्षण भी मिल जाय तो फिर वापिस आकर प्रातः काल वाली प्रसन्नता में मग्न हो जाओ और उस में लीन हो जाओ।

देखो, जब कुत्ते का स्वामी उस के पास मौजूद होता है, तो वह शेर हो जाता है। और जब अपने मालिक से जुदा रहता है इतना ज़ोर नहीं पकड़ता है जितना कि वह अपने

मालिक की मौजूदगी में ज़ोर करता है। जब प्रसन्नता से, आनन्द से, मस्ती से, ईश्वर से आप का दिल भरा हुआ है, तब तो जो काम आप करेंगे, वह उस दरजे का होगा कि जो आप का अकेला मन, एकाकी दिल, अकेला चित्त कभी भी नहीं कर सकता। पस, जब बाज़ पत्ती सीख सकता है, तो शोक है यदि मनुष्य नहीं सीख सकता ? क्या आप अपने आप को उस कुत्ते से वा उस बाज़ पत्ती से कमतर समझते हैं ?

कीड़ा वह ज़रा सां कि जो पत्थर में घर करे।
इन्सां वह क्या जो न दिले-दिल्बर में घर करे॥

मैदानों में एक जीव (पत्ती) होता है जिसको शायद कूंज कहते हैं। उनके विषय में जाञ्च करने से यह सिद्ध हो चुका है कि जो कूंज मर जाते हैं उन के अंडे बच्चे भी मर जाते हैं, और जो कूंज जीते रहते हैं उन के अंडे बच्चे भी जीते रहते हैं। इसका क्या कारण है ? इस का आशय वा कारण यह है कि कूंजो के अण्डों और बच्चों का जीवन तथा पालन पोषण उन कूंजों के ख्याल पर निर्भर है, और इसी कारण से वे कूंजे, जिन के अंडे व बच्चे होते हैं, यद्यपि उन का पालन पोषण वे नहीं करतीं बल्कि अन्य स्थानों को चली जाती हैं, तथापि उन का ख्याल बराबर बनाये रखती हैं, जिससे वे बच्चे ज़िन्दह (जीवित) रहते हैं। और जो कूंजें अंडा बच्चा देकर तत्काल मर जाती हैं, उन के बच्चे भी मर जाते हैं, क्योंकि उन के पालन पोषण का ख्याल लगातार बनाये रखने वाला कोई नहीं होता है। जब यह सच है कि मैदान की कूंजें अपने अंडों बच्चों के पालन पोषण का ख्याल पर्वतों और जंगलों में भी बराबर बनाय रखती और रख

सकती हैं, तो क्या मनुष्य अपने 'राम' में अपने मन को युक्त नहीं रख सकता ?

देखो, गर्भवती स्त्री घर के सब कामों को करती है, मगर अपने भीतर वाले बच्चे को नहीं भूलती; तो शोक है कि मनुष्य अपने भीतर वाले 'राम', अपने दिल वाले 'राम', परमेश्वर, उस सच्चिदानन्द स्वरूप, पेट वाले परमेश्वर को याद न रख सके। ऐसी दशा में तो क्या यह स्त्री जाति से भी गया गुज़रा नहीं है ? देखो, हाथी अंकुश के इशारे को समझ कर उसी संकेत के अनुसार समस्त काम करता है, तो मनुष्य यदि क्लेश के अंकुश के संकेत समझ जायं और अपने पूर्व क्लेशों और रंज से स्वयं ही कुछ समझ जायं, और पुनः ऐसा न करें कि जिस से फिर कोई कष्ट वा आफत अपने पर आ पड़े, तो उन के लिये कैसी उत्तम बात हो आध्यात्मिक उन्नति से अतिरिक्त कष्ट निवारण का और कोई उपाय ही नहीं है। राम जो कुछ कह रहा है, वह कहानी नहीं है। आज़मा लो और स्वयं देख लो।

प्राणिशास्त्रज्ञ (naturalist) ने आज कल एक कीड़ा दर्याफत किया है कि जो हवा को अपने गिर्द बांध लेता है, और उस वायु के कोष को अपने गिर्द लिपेटे हुए गंदले जलमें उतर जाता है। उस में कोई गंदगी असर नहीं करती। और जब वायु का कोष बिगड़ जाता है, तो फिर वह वायु में जाकर कोष (वायु का चोला) पहन लेता है। इसी तरह दुन्या में फिकरें (शोक), क्लेश, और रंज रूपी गंदले जल तो ज़रूर हैं, पर तुम को चाहिये कि शुद्ध ख्यालों (विचारों) से अपने को लिपेट कर शान्ति, प्रसन्नता और मस्ती का कोष पहन कर, दुन्या के क्लेश और रंज रूपी जल में दुन्या के किसी भागमें उतर जाओ। तुम को कोई दुःख नहीं पहुँच

सकता है। तुम को कोई रोक नहीं सकता। और जब देखो कि क्रोध नहीं रहा, तो फिर पहन लो।

रंजो-गम के प्लेग से दूसरों को बचाना

प्लेग वाले बीमार को अलग कमरे में रखते हैं। यदि तुम्हारे जीव को, तुम्हारे मन को दुन्या के शोक, रंज और फ़िक्र का प्लेग लग जावे, तो तुम्हें यह उचित है कि बाज़ार में मत जाओ, कोठड़ी में अलग चले जाओ, और जब तक प्लेग को दूर न कर लो, कोठड़ी के बाहिर न निकलो।

ईश्वर पर निश्चय जमाना कि सब कुछ वही करता है

ग्रीक मायथौलोजी (Greek mythology) में एक व्यक्ति का वर्णन है कि उस के साथ हरकुलीज़ (Hercules) लड़ने लगा और हरकुलीज़ ने इसे पिछाड़ दिया। पर भूमि उस व्यक्ति की माता थी, इस लिये जब वह ज़िमीन् पर लिटाया गया, उस की सारी गई हुई शक्ति पुनः प्राप्त होगई। उस हरकुलीज़ (पहलवान्) ने कई बार इस व्यक्ति को पिछाड़ा, किन्तु भूमि को छूते ही उस की सारी शक्ति फिर ताज़ा होगई, क्योंकि भूमि उस की माता थी। इस के अर्थ तो यह हैं कि सारी दुन्या का आधार ईश्वर है। दैवी-प्रकृति यह सिद्ध करती है कि खुदा, ईश्वर, "राम" वा परमात्मा उस भूमि की तरह सब की माता हुआ और हर व्यक्ति की गई हुई शक्ति उस से पुनः प्राप्त हो सकती है। और वह लोग जो खुदा (ईश्वर) को नहीं मानते, और कहते हैं कि ईश्वर नहीं है, सख्त गलती पर हैं। राम अपने निज के अनुभव से यह बात कहता है और ग्रन्थों के अध्ययन से भी ऐसा ही सिद्ध होता है। और अगर कोई न माने तो आज राम स्वयं अकेला यह कहता है कि वह मूर्ख (अह्मक़)

है जो कहता है कि परमात्मा नहीं है । डारविन (Darwin) हक्सले (Huxley) और हरबर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) इत्यादि परमात्मा को न मानें, और चाहे सारी खुदाई (सृष्टि) एक तरफ हो जाय, मगर हम ज़रूर यह कहेंगे कि "यह कहना, कि खुदा (ईश्वर नहीं है, बिलकुल गलत है।" बुद्धि का अन्धा वह होगा जो ईश्वर को न माने। निः सन्देह अगर उस को ईश्वर का, ब्रह्म का, स्वरूप ठीक २ मालूम हो जाय, तो अहो भाग्य उस के हैं। अब राम यह कहता है कि ज़रा विचार तो कीजिये । सब की जान वा आता परमेश्वर वा "राम" है। तुम लोग दुन्या में रहते २ बुड्ढे गये, और चलते चलते थक गये हो, तुम्हारे हौसले (उत्साह) टूट गये हैं और बीमारी भी आ गई है, अब भी यदि ज़रा अपनी हिम्मत के कंबल को बिछाओ और उस पर लेट जाओ, और पक्का निश्चय, विश्वास तुम्हारे दिल में, तुम्हारे जिगर में यदि आ जाय, तो यह सब दुःखड़े दूर हो जायं, और तुम फिर उसी प्रकार बहाल (तरो ताज़ा) हो जाओगे कि जैसे हरकुलीज़ के साथ लड़ने वाला हुआ था।

निश्चय की दृढता के लाभ।

यह राम अमरीका देश में तीन वर्ष के लगभग रहा। वहां देखा कि लाखों बल्कि क्रोड़ों स्त्री पुरुष ऐसे हैं कि जो अपना इलाज (चिकित्सा) आध्यात्मिक रीति से करते हैं। और एशिया के बहुत से भाग ऐसे हैं कि वहां की सरकार ने विना औषधि के रोग निवारण करना उचित क़रार दिया है। इस आध्यात्मिक रीति से रोग निवारण करने में पहिले पहिल डाक्टरों ने बहुत बाधाएं डालीं, मगर जो यूनीवर्सटी (विश्व विद्यालय) के प्रोफेसर और मैडीकल ब्राञ्च (चिकित्सा शास्त्र)

के उत्तम २ और योग्य बुद्धिमान् अफसर थे, वे सब इस के क़ायल हो गये, और वे फिर भी प्रोफैसर माने जाते हैं।

प्रोफैसर जेम्स (Professor James) ने इंगलेंड में बीस लैक्चर दिये हैं, और वह स्वयं यह स्वीकार करता है कि वह नया मत जो केवल ईश्वर के नाम और परमात्मा के ध्यान से इलाज (चिकित्सा) करने का जारी हुआ है, वह निःसन्देह सब से उत्तम है। मगर आज कल के अधूरे विज्ञान (Science) और अन्तःकरण शास्त्रज्ञ (Psychologist) इन घटनाओं का यदि प्रमाण दे सकें, तो वाह २, क्या कहना है; और यदि न दे सकें, तो घटनाओं का कुछ नहीं घटता है। यह उन्हीं के ज्ञान की कमी है, न कि घटनायें ग़लत हैं।

दीन और दुन्या की उन्नति साथ साथ होती है।

मैं शोक करता हूँ कि इस अधूरे विज्ञान और अधूरे मनो-विज्ञान के जानने वाले प्रमाण (सबूत) नहीं दे सकते और कहते हैं कि क्या दीन और दुन्या की तरक़्क़ी दोनों एक साथ चलती है? उनका ख्याल है कि दोनों तरक्क़ियां (उन्नतियां) इकट्ठा नहीं चलती हैं। परन्तु उनका यह ख्याल ग़लत है, और वह अधूरे हैं, कदापि पूरे नहीं। अन्यथाः—

"ऐ दवाए-जुमला इल्लत हाये-मास्त"।

(अर्थः—ऐ मेरे समस्त रोगों की औषधि।)

इस विश्वास पर अभ्यास करते और फिर उन के दिल में ऐसा ख्याल ही न उत्पन्न होता।

बूटी लाऊं, न औषध खाऊं, न कोई वैद्य बुलाओं।
पूर्ण वैद्य मिले अविनाशी, वाहि को नवज़ दिखाऊं॥

और इससे तीनों ताप भाग जाते हैं।

जिसके दिल में परमेश्वर समा गये हैं, वह बराबर दोनों (व्यावहारिक और पारमार्थिक) उन्नतियां करता रहेगा। इसमें नितान्त संशय नहीं है। वह सब दुन्या के काम करते हुए किस तरह ईश्वर में रहेगा? वह उसी तरह से रहेगा जैसा कि हम ने ऊपर कहा है। यह ग़लत है किः—

हम खुदा ख्वाही व हम दुन्या-ए-दून्।
ईं ख्यालस्तो-मुहालस्तो-जुनूं॥

अर्थः—एक ओर ईश्वर की प्राप्ति चाहना और साथ ही साथ दूसरी ओर दुन्या की उन्नति चाहना, यह दोनों भ्रम मात्र, कठिनाई मात्र और शेखचिल्ली मात्र वा पगलापन है।

राम कहता है कि यह कहना ग़लत है, बल्कि ऐसा ख्याल करना ही पगलापन है। बल्कि उक्त वाक्य ही के विषय यह कहना चाहियेः—"ईं ख्यालस्तो, मुहालस्तो-जुनूं।" क्योंकि अगर ऐसा नहीं है, तो ऐसे ईश्वर और ऐसे धर्म की ज़रूरत ही क्या है। परमेश्वर सर्व व्यापक है और दुन्या में हर जगह मौजूद है। और वह सारा साधन धर्म का ग़लत है कि जो तुम को निकम्मा कर देता है। असली साधन न मुसल्मानों में और न ईसाइयों में पढ़ाया जाता है। यह ग़लत समझने वाले हैं जो कहते हैं कि दीन और दुन्या दोनों की उन्नतियां इकट्ठी नहीं हो सकतीं। तत्त्व यह है कि दीन और दुन्या दोनों हम पल्लह (एक साथ) चलती हैं। वह जो कहते हैं कि "हम तो धर्म (दीन) में बढ़े हुए हैं, दुन्या की उन्नति हम नहीं कर सकते," ग़लत समझते हैं। ऐसा नहीं है, दोनों तरक्कियां इकट्ठा चला करती हैं। ऐसा नहीं होता कि सिर और पैर अलग अलग चलें, या एक पत्ती का एक पर एक ओर और दूसरा पर दूसरी ओर जाय। जहां पर धर्म होता है, वहां पर विजय होती है। जहां विष्णु भगवान् हैं, वहां

लक्ष्मी जी हैं। और परमेश्वर में ही रहना सहना विष्णु है। जहां विष्णु जी नहीं हैं, वहां लक्ष्मी जी भी नहीं हैं। यह नहीं हो सकता कि लक्ष्मी की तो पूजा कर लो और विष्णु भगवान् की पूजा न करें और फिर लक्ष्मी जी आजावें वा मिल जावें।

हर जा कि सुल्तां खेमा ज़द।
ग़ौग़ा न मानद आम रा॥

अर्थः—जहां पर बादशाह सलामत (भगवान्) डेरा डाल लेते हैं, वहां साधारण लोगों का शोर शराबा नहीं रहता।

जहां पर सूर्य निकल आया, अन्धेरा और मच्छर कहां रहेगा? जहां एक चश्मा (स्रोत वा धारा) बहने लगा, प्यासे आप से आप आने लगेंगे, खुद बखुद आने लग पड़ेंगे। इसी तरह जिस दिल में परमेश्वर ने, खुदा ने बास कर लिया है, उस के पास संसार के पदार्थ आप से आप आने लगेंगे। सच्चा विश्वास दिल में भरा हुआ रखना चाहिये। और उपाय ठीक रखना चाहिये। यदि विधि वा उपाय बिगड़ गया, तो सारा काम बिगड़ गया, जैसे गाड (god) को उलट देने से डाग (dog) हो जाता है, जिस का नाम लेना ना मुनासिब (अनुचित) है। गाड (god) ईश्वर का नाम, उलट देने से क्या हो गया? सग (कुत्ता) हो गया। इसी प्रकार विधि वा साधन को ज़रा ठीक लिये हुए आप चलेंगे, तो आप को मालूम हो जायगा कि सिर और पैर इकट्ठे चलते हैं, और ऐसा नहीं होता कि सिर के स्थान पर पैर और पैर के स्थान पर सिर हो जाय। विधि ठीक तो यह है कि सिर रहे हवा में और पैर रहें ज़मीं पर।

राम से लोगों ने प्रश्न किया कि कैसे आप कहते हैं कि सिर को हवा में रखो और पैर ज़मीं में रहें? परमात्मा ऊपर है और देह नीचे है। ऐसा न कर दो कि स्वार नीचे और

घोड़ा ऊपर हो।

you need not put the cart before the horse.।

तुम को यह ज़रूरत नहीं हैं कि गाड़ी को घोड़े के आगे लगाओ। अपने भीतर शुद्ध ब्रह्मानन्द स्थिर रखने से, वह उन्नति देने वाला विनोद स्थिर रखने से, दीन और दुन्या दोनों सुधरती हैं।

कर्म की विधि, अर्थात् दुन्या में कैसे काम करना चाहिये

एक कमस्लेट का गुमाश्ता (commissariate agent) हज़ारो रुपयों की रसद अपने हाथों से निकालता है, और सैकड़ों सिपाहियों के साथ व्यवहार रखता है। यह गुमाश्ता लाखों का सामान रखता है, पर उस को कभी भी यह भ्रम नहीं होता कि यह सामान मेरा है, और न किसी सिपाही से निजी मुहब्बत वा आसक्ति वह करता है। चाहिये वह खज़ाना, जिस का कि वह गुमाश्ता है, यदि कम हो जावे, तो सरकार और भेज देगी, पर उस को कुछ शोक न होगा। यदि लाभ है तो सरकार का, और हानि है तो सरकार की। उस का तो कर्तव्य है कि वह अपना काम आनन्द से करता रहे। ईश्वरोपासक और सच्चा भक्त वह है जो अपनी सम्पत्ति को सरकारी गुदाम समझता है, सदा रहने वाली सरकार की दौलत समझता है, और नौकर तथा सम्बन्धियों को सरकारी सिपाही जानता है, और उन में से किसी से भी मुहब्बत (मोह वा आसक्ति) नहीं करता है, वह निःसन्देह दीन और दुन्या दोनों को सुधारता है। काम करने का तुम्हें इखत्यार है, पर उसकी सफलता वा फल के लिये दिल लगाना बेकार (व्यर्थ) है।

वह मनुष्य जो अपने मालिक के पास जा कर केवल प्रणाम किया करता है और काम नहीं करता है, वह कभी

भी अपने मालिक का प्यारा नहीं हो सकता। प्यारा वही होता है जो उस का काम ठीक २ करता है। इसी प्रकार केवल माला फेर लेना या पुस्तक का अध्ययन कर लेना काम नहीं है, बल्कि उस पर अमल करना अर्थात् उसे व्यवहार में लाना, और उस सच्चिदानन्द परमात्मा का सच्चा विश्वास अपने दिल में भर लेना काम है।

गीता की एक पुस्तक एक कपड़े में लिपटी हुई एक खूंटी पर लटकी है। प्रातःकाल उठकर उस को केवल हाथ जोड़ कर प्रणाम करना तो बेकार (व्यर्थ) है।

भारत वर्ष में रहने वाले अधिकतर झूठ बोलने को प्रायः तैयार हो जाते हैं, इस लिये वैसे लोग कभी भी उपासक वा भक्त नहीं हो सकते और न ईश्वर को स्वीकृत हो सकते हैं। काम ऐसा होना चाहिये कि दुन्या के धन्धे तो करते रहें, मगर दिल परमेश्वर से लगा रहे और उस के सच्चे विश्वास का आनन्द दिल से न जाने पावे। उसी सरकारी गुमाश्ते की तरह कि सारे दफ्तर में तो उसका काम मौजूद है, मगर उस को किसी से मुहब्बत (मोह वा आसक्ति) नहीं है। वह किसी में भी चित्त से आसक्त नहीं है। काम यह है कि सारी दुन्या परमेश्वर की है और हम परमेश्वर के नौकर हैं। जगत् का हर एक काम परमेश्वर का काम है। जब तुम किसी काम को जाओ, सर्वदा यह ख्याल कर लो कि मैं अपने परमेश्वर के काम को जाता हूं। और उस ख्याल के करने में तुम्हारी कुछ हानि नहीं है। तुम को इसी तरह कहना चाहिये कि मेरे मालिक ने मुझे जगाया है, मैं अपने प्यारे परमेश्वर के खेतों में काम करने को जाता हूं। बल्कि अगर यह ख्याल दिल में हो, तो देखो, इधर तो आप के दुन्या के काम भी बनें और उधर परमेश्वर भी राज़ी रहे। अपने

निश्चय दृढ़ रक्खो और दुन्या के काम भी करो।

हर काम में ईश्वर को हाजिर नाजिर जानना और उस के लाभ

एक व्यक्ति के पास दो मनुष्य आये और उन्हों ने उस से कहा कि हमको अपना चेला बना लो। व्यक्ति ने कहा कि पहिले आप लोगों को आज़मा तो लिया जाय, फिर आप को चेला बना लिया जायगा। कुछ दिनों के बाद उस व्यक्ति ने हर एक को एक एक कबूतर दिया और कहा कि जो तुम में से इस को पहिले मार करके लायगा, उसी को हम चेला बनायंगे; मगर उसमें इतनी शर्त है कि कबूतर मारते समय कोई देखता न हो। दोनों मनुष्य अपना अपना कबूतर ले कर चले। उन में से एक ने तो झट बाज़ार ही में लोगों की ओर पीठ करके कबूतर की गर्दन मरोड़ दी और मार कर ले आया, और कहा कि हम को चेला बनाइये। उस व्यक्ति ने कहा कि अच्छा, दूसरे को भी लौट आने दो, जब वह लौट आवेगा तब चेला बनायंगे। अब दूसरे की प्रतीक्षा में सारा दिन बीत गया, दूसरा दिन भी गुज़र गया। दो दिन तक वह न आया। तीसरे दिन सायं को वह लौट कर आया, और वह कबूतर ज़िन्दह हाथ में लिये हुए था। उस ने आकर कहा कि महाराज! मुझ से तो यह शर्त पूरी नहीं हो सकती है। कोई और काम बताइये। उस व्यक्ति ने कहा, क्यों? उस ने उत्तर दिया कि जब मैं जंगल को कबूतर मारने ले गया, तो कबूतर के सिर में से वह मस्त, मतवाले, रसीले नेत्र मेरे मुँह की ओर ताकने लगे। जब जब मैं ने उसकी गर्दन मारने को हाथ से पकड़ी, तब तब उस की आँखें मेरे को तकने लगती हैं। तब मुझे ख्याल आ जाता है कि महाराज ने तो कहा था कि कोई मारते समय देखने न पाये, यहां तो इस कबूतर के भीतर जो जीव है वह तो आँखों के रास्ते से

मस्त और मतवाला बना हुआ देख रहा है। शोक है कि जब तुम चोरी करने लगे वा दुराचार करने लगे थे, और जिस वस्तु के साथ हम दुराचार करते हैं, उस के भीतर वह द्रष्टा, वह ब्रह्म, वह सच्चिदानन्द परमेश्वर बैठा हुआ ताक रहा है, मगर हम को नहीं सूझ पड़ता है। सब धर्म (वा मत मतान्तर) यह कहते हैं कि परमेश्वर सर्व व्यापक है, भरपूर है। मगर हम ने धार्मिक ग्रन्थों को खाली पढ़ने को देखा था, अमल (व्यवहार) और वर्ताव के लिये नहीं पढ़ा था। इस समय कोलैक्टर साहिब (हाकिमे-ज़िला) सभापति के आसन पर विराजमान हैं। उन की मौजूदगी में तो मारे भय के चुप बैठे भी न बोलोगे, उन के सामने उंगली तक न फैलाओगे, पैर करना तो दूर रहा। मगर परमेश्वर का कि जो समस्त संसार का बादशाह है, सब बादशाहों का बादशाह है, शाहंशाह (महाराजाधिराज) है, लाटों का लाट और सब के ऊपर शासक है, और प्रति क्षण अपने पास मौजूद है, हम ज़रा भी भय न खायं, उस से हम ज़रा भी न डरें। अगर हम सच-मुच परमेश्वर को हाज़िर नाज़िर जानते हैं, तो इतना भी उस का लिहाज़ (आदर, संमान) न हो कि उसकी मौजूदगी में, स्त्री के नेत्रों में, प्यारी २ रसीली आँखों को देखकर हम बुरा ख्याल करें और ऐसा ख्याल करते हुए उन के साथ दुराचार करें, ऐसा करते समय हम मर क्यों नहीं जाते? यदि हम ईश्वर को सर्वत्र मानते हैं, तो रिश्वत लेते समय, श्वेत श्वेत गोल (रुपया) लेते समय, जबकि ज्योतिषां ज्योति वहां पर मौजूद हो, ऐसी दशा में रिश्वत लेते समय हमारा हाथ काँप क्यों नहीं जाता। हाय, हम मानते हैं और जानते भी हैं, पर अमल नहीं करते, अर्थात् उसे व्यवहार में नहीं लाते। अन्यथा हमारा जीवन फरिश्तों का जीवन और अवतारों का

जीवन हो जाता। और प्यारे! ये निश्चय वा विश्वास व्यवहार में लाने पड़ेंगे। इस ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं है। बिना इस के मुक्ति कदापि कदापि नहीं मिल सकती।

कभी न छूटे पीड़ दुःख से जिसे ब्रह्म का ज्ञान नहीं।

कष्टों ही से मनुष्य की उन्नति का पाठ पढ़ना उचित है। डारविन, हक्सले (Darwin Huxley) इत्यादि कहते हैं कि बनस्पति और पशु वर्ग में बिना युद्ध और कलह के उन्नति नहीं होती है, और यह नियम मनुष्यों के लिये भी होना चाहिये। मगर वे पुनः यह कहते हैं कि मनुष्यों में ऐसे नियम का प्रयोग अनुचित मालूम होता है। हम यह नहीं कहते कि बनस्पति वर्ग और पशुवर्ग में युद्ध और कलह से उन्नति नहीं होती, मगर मनुष्यों के लिये यह नियम नहीं है। मानुषी दुन्या की रीति वा प्रवृत्ति (process) भिन्न है। पशुवर्ग की उन्नति विद्या के पढ़ने से नहीं हो सकती, इस लिये घोड़ा यदि चलने से इन्कार करेगा, तो वह चाबुक खावेगा। इसी तरह दुन्या में जब शोक आता है, तो हम को यह समझना चाहिये कि हम ठीक तरीक़े (मार्ग) पर नहीं चले, इस लिये शोक का चाबुक लगाया गया है। अब हम को ठीक हो जाना चाहिये, जिस से हम शोक और रंज के चाबुक न खायें।

दी चाबुक की चोट जो बिगड़ा काम हमारा।

अमरीका के गिरजे में एक बहुत बड़ा बाजा था जो हमारे यहां की दो तीन दुकानों में समा सके। उस गिरजा में रविवार के दिन हज़ारों मनुष्यों का समूह था। उस समय वहां एक अपरिचित (अजनबी) मनुष्य आ गया। उस ने वह बाजा बजाना चाहा। पर पादड़ी साहिब ने कहा कि "कौन मूर्ख बाजे की ओर जा रहा है, उस को परे हटा

दो, अन्यथा वह बाजा विगाड़ देगा। चुनांचि (तदनुसार) वह वहां से हटा दिया गया। जब गिरजा हो चुका अर्थात् जब गिरजा की कार्यवाही समाप्त होगई और समूह कम हो गया, तो वह चुपके चुपके बाजे के पास पहुँचा और उस के परदों को छेड़ दिया। छेड़ते ही एक ऐसा राग, ऐसा शब्द, एक ऐसी ध्वनि शुरू होगई कि बाजे की आवाज़ सुन २ कर लोग लौट आये और भीड़ होगई। मतवाले बने हुए लोग ऐसे घसीटते चले आ रहे हैं जैसे बीना की आवाज़ पर सर्प। यह अपरिचित व्यक्ति कौन था? यह वही व्यक्ति था कि जिस ने बाजा को बनाया था, जो बाजे का निर्माता था। तो फिर बाजे की आवाज़ क्यों न लोगों को मस्त कर देती? और लोग क्यों न मतवाले बन जाते? और क्योंकर न मस्त हो जाते? और जब लोगों को तथा पादड़ी जी को भी मालूम होगया कि वह स्वयं उस बाजे का निर्माण करने वाला था, तब सारा बाज़ा उस को दे दिया गया और उस ने फिर और भी उत्तम रीति से बाजा बजाया। इसी तरह हमारा शरीर बाजे के समान है। उस में पादरी कौन है? पादरी परिच्छिन्न मैं (तुच्छ अहंकार) है कि जो यह चाहती है कि बाजा को संभाल कर रखें, और यह उचित भी है। मगर एक बात और चाहिये, कि जब इस बाजे का मालिक, इस का स्वामी आवे, तब तो सारे बाजे को पेश कर देना उचित है। वह मालिक, वह स्वामी वा पति कौन है? वह मालिक, वह स्वामी, उस शरीर रूपी बाजे का निर्माण कर्त्ता, उस का बनाने वाला ईश्वर वा खुदा है। अगर आप अपने दिल, तन, मन और बदन से इस बाजे को बजायंगे, तो ज़रूर है कि सारी सृष्टि के लोगों को प्रसन्न कर देंगे और मस्त बनादेंगे। वह ही

काम ऐसा होता है जिस को सारी दुन्या देखती रह जाती है। जितना २ अपने भीतर दीन या इस्लाम (विश्वास) को भरते हैं, उतना २ आनन्द प्राप्त होता जाता है।

करो शहीद खुदी के स्वार को रो कर।
यह जिस्मे-दुलदुले-बेयार कीजिये तो सही॥

लाहौर में और लखनऊ में दुलदुल (अमाम का घोड़ा) निकलता है, उस पर लोग पुष्प चढ़ाते हैं, उस की इज़्ज़त करते है। उन के दिलों में जोश भर जाते हैं। उस पर दुन्या के आदमी स्वार नहीं होते हैं। खुदी के स्वार (अहंकार) को दुलदुल बना कर खुदा ही को उस पर स्वार बना देना है। जो लोग ऐसा करते हैं उन की पूजा होती है। यदि तुम अपने अन्तःकरण को शुद्ध करते हो और वास्तव में सच्चा निश्चय ईश्वर पर, विश्वास परमेश्वर पर वा श्रद्धा निज' स्वरूप पर करके चलते हो, और निश्चय के शब्द पर अपनी मुहर लगाये हुए हो, तो तुम एक दुन्या को क्या, हज़ारों दुन्या को गिरा दोगे, और तुम्हारी दृष्टि में वह कुछ काम न होगा।

हज़रत मुहम्मद साहिब को लोगों ने डराना चाहा, भय देने चाहे, और कहा कि हट जाओ अपने ख्याल से। अपने ख्याल को छोड़ दो। मगर हज़रत साहिब के दिल में चूंकि सच्चा विश्वास वा निश्चय भर गया था, उन का अन्तः करण शुद्ध था, और उन के चित्त में ऐसा आनन्द भरा हुआ था कि " एक वही तो सत है, बाकी जो दुन्या है और जो दुन्या के लालच व सम्बन्धी हैं, वे सब झूठ हैं। " इस लिये जब लोग कहते थे कि तुम अपने ख्याल को छोड़ दो, वरना हम तुम्हें मार डालेंगे, तो उन के दिल में आनन्द की

बात चूंकि पूर्ण समा चुकी थी, इस लिये वह लोगों से यही कहते थे कि अगर सूर्य दाहनी ओर और चाँद बाईं ओर आ जावें, तब भी मैं नहीं रुक सकता। अगर सत्य पूछो, तो तुम्हारे वेद भी सिर पटक २ कर यही चिल्ला रहे हैं कि अपने चित्त को शुद्ध करो, और उस में उस सच्चिदानन्द परमेश्वर का निश्चय भर लो। देखो, जब मुहम्मद साहिब को ईश्वर पर विश्वास आ गया, तो क्या रेगस्तान और क्या अरब हर जगह अपना ज़ोर भरता हुआ चला गया। क्या मुहम्मद साहिब को, क्या उस के किसी अनुयायी को कोई भी कारण ज़ाहिर होता था कि वह काम्याब (सफल) हो जावेंगे। मगर विश्वास, निश्चय की शक्ति को देखियेगा कि जब तक उस के विश्वास की शक्ति बढ़ती ही रही, सफलता की गति भी घटने की ओर नहीं झुकी। और परिणाम यह हुआ कि वह शक्ति उछल २ कर आकाश की ख़बरें ला रही है। और योरूप तथा अफरीका व एशिया के परले सिरे तक उन की शक्ति फैल गई और उस ने केवल एक ही शताब्दी में हज़ारों भारी २ काम (कारनामे) करके दिखला दिये। इस का क्या कारण है? विश्वास, परमेश्वर पर निश्चय रखने के सिवा और कुछ नहीं है। भरोसा (आश्रय) किस का चाहिये? परमेश्वर, खुदा में पैर जगाना चाहिये। जीता है वह जो खुदा, परमात्मा जीता में है। बाक़ी तो सब मर गये हैं। संशय तो तपादिक़ (क्षय रोग) है, यह तुम को मार डालेगा। शोक के योग्य है तुम्हारा जीना। विश्वास, परमेश्वर का निश्चय, चित्त की शान्ति की शक्ति के विषय में तुम्हारे शास्त्र भी पुकार २ कर यही कहते हैं कि चाहे कुछ हो, चाहे कोई परिवर्तन प्रकट हो, परन्तु सत्य की बात को न भूलो।

दुन्या की असलति

यह दुन्या नाटक (theatre) के समान है। और हम सब उस में नट वा नर्तक (actors) के सदृश हैं। कोई एक्टर (नट) नाटक में खेल करते समय अपनी असली हालत को भूल नहीं जाता है, और हरेक नाटक करने वाला उसे नट (actor) ही समझता है। तो फिर क्या इस दुन्या के थियेयर (theatre नाट्यशाला) में हम को अपना वास्तविक स्वरूप भूल जाना चाहिये ? इस को नाटक (तमाशा) न समझना चाहिये।

बाज़ीचा-ए-*अतफाल है दुन्या मेरे आगे।
होता है शबो-† रोज़ तमाशा मेरे आगे॥

दुन्या के कष्टों से निर्भय रहना चाहिये

फारसी में एक नया धर्म (मत) आज कल चला है। उस का अनुयायी शायद प्रसिद्ध सुलेमां खां था। सुनते हैं कि लोगों ने उस (सुलेमां) को अपने ख्याल से बाज़ (अलग) रखना चाहा। पर जब उस ने न माना, तब लोगों ने उसे एक ऊञ्ची दीवार पर जीवित खड़ा किया और उस की दोनों भुजाओं में छेद करके उन में उलका (torch) गाड़ दीं और उन मिशालों (दीपिका) को फिर जला दिया। तब वे लोग कहने लगे कि अगर तुम अपने इस ख्याल से बाज़ आ जाओ (अर्थात् हट जाओ), तो तुम को इस कष्ट वा दुःख से मुक्ति मिल जाय। मगर देखिये सच्चे निश्चय के बल को, कि वह कुछ परवाह नहीं करता और बड़ी खुशी से उस दीवार पर नाच रहा है और कह रहा है। कि ऐसी खुशी में मरना भी उत्तम है। लुन्दी मार आग पर जाला

* बच्चों का खेल † दिन रात।

गया और कुछ भय नहीं खाया। सौकरेटीज़ (socrates) ने विष का प्याला उठा कर बड़ी खुशी से पी लिया, और अपने निश्चय, विश्वास को नहीं छोड़ा। वह सच्चे असूल हैं। इन को हमें मानना चाहिये और बतलाना चाहिये किः—

अगर बीनम कि नाबीना व चाहऽस्त।
अगर खामोश बिनशीनम गुनाहऽस्त॥

अर्थः—अगर मैं देखूं कि एक कूप है और अन्धा उधर जा रहा है, यदि मैं उस को न कुछ कहूं बल्कि चुप होकर बैठा रहूं, तो पाप है।

बरकले (Berkeley) ने बाह्य वस्तुओं के विषय सिद्ध किया है कि वे कुछ नहीं हैं, और ह्यूम (Hume) ने भीतरी वस्तुओं को उड़ा दिया अर्थात् मिथ्या सिद्ध किया है। तो अब बाक़ी क्या रहा? ठन ठन गोपाल। जैसा ख्याल जमाओगे, वैसा ही होगा। ख्याल का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। एक बार का कथन है कि किसी व्यक्ति ने अपने भीतर बकड़ी का भाव अर्थात् ख्याल भरकर अपना सिर एक मेज़ पर रख दिया, और पैर दूसरी मेज़ पर। और अपना शरीर ऐसा पुख़्ता सा कर दिया कि उस पर बहुत सी वस्तुएं लादी गईं, मगर उस का शरीर न झुका और उस को कुछ न मालूम हुआ। बकड़ी का भाव भरने से जब मनुष्य बकड़ी हो जाता है, तो क्या ईश्वर का भाव भरने से ईश्वर न होगा? ज़रूर होगा। मशीन जब तक सेन्टर में रहती है, काम करती है। मगर जब सेन्तर से अलग हो जाती है, तब अलग हो जाने से काम नहीं होता। इसलिये, काम करने के लिये उस को सेन्टर (केन्द्र) में लाना चाहिये। हमारा यह शरीर मशीन के सदृश है, और इस का केन्द्र

परमात्मा है। अत एव जब तक यह मशीन, परमात्मा रूपी केन्द्र में न आवे, उस से कोई काम नहीं निकल सकता। देखो, हिचकी जब चलती है तो हवा उस के गिर्द हो जाती है। इसी तरह से जब तुम ईश्वर के साथ चलते हो, तो प्रकृति (कुद्रत) तुम्हारे साथ हो जाती है।

इंगलैंड में एक लड़का कोई परीक्षा देने गया। और जब सवाल (प्रश्नों) का पर्चा लिखता था, तब वह बार २ अपने जेब से एक कागज़ निकाल २ कर देख लेता था और फिर लिखने लगता था। परीक्षागृह के निरीक्षक (मुहाफ़िज़) ने देखा और ख्याल किया कि लड़का कुछ नक़ल करता है। उन्होंने उसके पास जा कर उससे दर्याफ्त किया कि तुम जेब से निकाल कर क्या देखते हो? उसको मुझे दिखला दो। लड़के ने कहा कि मैं कोई अनुचित कार्यवाही नहीं करता हूं। उन्हों ने कहा कि तुम्हारी जेब में क्या है, दिखा दो, और उस के निकालने पर वह आमादह (तैयार) हुआ। तब उस ने उस तस्वीर को जेब से निकाल कर और दिखला कर कहा कि यह तस्वीर मेरी प्यारी प्रिया की है कि जिस के कारण मैं यहां परीक्षा देने आया हूं, क्योंकि उस ने मुझ से यह इकार कर लिया है कि अगर मैं परीक्षा पास कर लूं, तो वह मेरे साथ शादी कर लेगी। जब मैं लिखते लिखते थक जाता हूं और चित्त में परेशानी भर जाती है, तो मैं अपनी इस प्यारी माशूक़ा की तस्वीर को देख लेता हूं, और मेरी तबीयत आनन्द से भर जाती है, परेशानी दूर हो जाती है, और भूला हुआ भी याद आ जाता है। पस दुन्या के इम्तिहान में हर व्यक्ति को अपने ब्रह्म, परमेश्वर, सच्चिदानन्द की तस्वीर, जो कि हृदय में विराजमान है, बार बार देखना लाज़िम (ज़रूरी) है।

दिल के आईने में है तस्वीरे-यार।
जब ज़रा गर्दन झुकाई देख ली॥

ईश्वर से ईश्वर ही को मांगना चाहिये।

एक राजा का जन्म दिन था। उसने अपने नौकरों, चाकरों को हुक्म दिया कि आज हमारी खुशी का दिन है, जो कुछ तुम मांगोगे वही पावोगे। चुनाँचि किसी ने ग्राम, किसी ने इलाक़ा, किसी ने रुपया, किसी ने नौकरी इत्यादि मांगी। मगर एक लौंडी उदास सूरत बनाये हुए मकान के एक कोने में खड़ी थी। राजा उस तरफ से निकला और लौण्डी को मैले कुचैले कपड़े पहने हुए और शोकातुर (गमगीन) सूरत बनाये हुए देखा। राजा ने उस से पूछा कि हमारे यहां तो इतनी बड़ी खुशी का दिन है और सब नौकर चाकर खुश हैं, पर तू क्यों ग़मगीं (उदास) है? जो कुछ तेरा जी चाहता है मांग। लौंडी ने कहा जो मैं मांगूगी 'हजूर नहीं देंगे'। तब राजा ने कहा कि जो कुछ तू मांगेगी, सो पावेगी। तब उस लौण्डी ने कहा कि हजूर हाथ दें (अर्थात् पूरी प्रतिज्ञा करें)। राजा ने अपना हाथ फैला दिया। लौण्डीने कहा,बस, मैं इसी हाथ को मांगती हूं। राजा अपने वचन से विवश था,और उसको उसी लौण्डी का होना पड़ा। ऐसी दशा में ईश्वर से हमें सिवा ईश्वर के और क्या मांगना चाहिये। देखो, जब कि लौंडी ने राजा से राजा ही को मांग लिया, तब बाकी क्या रक्खा रहा। उस ने सब कुछ मांग लिया। इसी तरह से जब हम ईश्वर से ईश्वर ही को मांग लेंगे, तो बाकी क्या रह जावेगा? बाक़ी कुछ न रह जावेगा। ईश्वर के मिलने से संसार के सब पदार्थ भी मिल जावेंगे। इस लिये हम को ईश्वर से ईश्वर ही मांगना चाहिये।

तुरा अज़ तो मे ख्वाहम ए किर्दगार !

अर्थः—ऐ सृष्टि के रचने वाले परमेश्वर ! तुझ से मैं तुझे ही चाहता हूं।

जिन्नत परस्त ज़ाहिद कब हक़ परस्त है।
हूरों पे मर रहा है, शहवत परस्त है॥

जो व्यक्ति ईश्वर से कोई दुन्या की चीज़ मांगता है, तो मानो वह ईश्वर को आज्ञाकारी दास बनाता है और यों कहता है। कि द्वार के बाहिर खड़े रहो, जो हम कहें सो करना।

देखो, जो व्यक्ति अपनी छाया की ओर उस को पकड़ने के लिये दौड़ता है, तो साया आगे आगे चलता है, उस से भागता है। इसी तरह से जब तुम दुन्या के विषय-भोगों और रिश्ते-नातों की ओर जाते हो, तो वह तुम से भागते हैं, और तुम उन की प्राप्ति के रंजो-क्लेश उठाते हो और वह कम नहीं होते हैं। इस लिये अगर ऐ प्यारो ! तुम अपना मुँह सूर्य की ओर करके चलो, तो देखो, कि छाया आप से आप तुम्हारे पीछे २ चली आवेगी, और कभी भी तुम से जुदा नहीं हो सकती। इसी तरह जब तुम दुन्या के विषय-भोग और उनके रिश्ते-नाते को त्याग दोगे, छोड़ दोगे, और अपना मुँह उस परमेश्वर सच्चिदानन्द की ओर कर लोगे, तो दुन्या के पदार्थ सब आप से आप तुम्हारे पास चले आवेंगे। ईश्वर की तरफ चलने से दुन्या तुम को कभी भी नहीं छोड़ सकती। सूर्य को दुन्या के गिर्द घुमाने के स्थान पर ज़मीन को सूर्य के गिर्द घुमाना अच्छा है। तात्पर्य यह है कि इस सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा को समस्त अभिलाषाओं के गिर्द घुमाने के स्थान पर यह उत्तम होगा कि समस्त इच्छाओं को उसके गिर्द घुमाओ।

जापान की नुमायश में तीन २ सौ वर्ष के पुराने वृक्ष देवदारु के ऐसे देखने में आये कि जिस की आयू तो तीन सौ वर्ष की, मगर लम्बाई में केवल हाथ भर के, यद्यपि देवदारु वृक्ष की मामूली लम्बाई सागूं के वृक्ष से भी अधिक होती है। दर्याफ्त से मालूम हुआ कि जितना वृक्ष भूमि के ऊपर ऊपर बढ़ता है, उतना उसकी जड़ें भूमि के नीचे अन्दर बढ़ती हैं, और वहां के लोगों ने यह विधि की थी कि जमीं के नीचे नीचे सुरंग के समान रास्ता बना रक्खा था, जब २ उस की जड़ें नीचे को बढ़तीं, तब २ उनको काट देते। पस, जब नीचे जड़ें नहीं बढ़ने पाती थीं, तो वृक्ष भी ऊन्चा नहीं होने पाता था। इसी प्रकार यदि तुम अपनी इच्छाओं की जड़े छांटते रहोगे, तो वे बढ़ने न पायेंगी। और छोटा रहना सम्भव है, क्योंकि दैवी-विधान सब जगह एक समान काम करता है।

दुन्यावी इच्छाओं की जड़ काटने के लाभ

कृष्ण महाराज गीता में कहते हैं, जो अपना सारा जीवन भगवदर्पण कर देते हैं, उनका जीना सफल है। He, whose life is for my sake, will have it !

अपना जीवन ईश्वरार्पण करना

देखो, जीना पारह जब लोग खा लेते हैं, तो उस पारह से लोग मर जाते हैं। और जब उसे कुश्ता बना कर, अर्थात् उस को मार कर मनुष्य खाता है, तो वह अमृत का काम देता है। सोना जब जीवत है, खा लेने से सब लोगों को हलाक (काल वश) कर देता है, और कुश्ता की हालत में अर्थात् जब सोने को मार कर खाया जाय, तो मरने वाले को भी जीवत कर देता है।

मुर्दा होकर दुन्या में रहना खूब है

जीवित पुरुष जब पानी में घुसता है, तो पानी उसे नीचे दबाता रहता है। मगर जब मनुष्य मुरदह हो जाता है, तो पानी भी उसको अपने सिर पर (अर्थात् ऊपर) उठा लेता है, वा अपने कंधों पर उठाय रखता है। इस प्रकार संसार में जीता रहने से मरना ही उत्तम है। और देखो, जब मरना ही उत्तम है, और मरना एक दिन अवश्य है, तो आज ही भीतर से मर क्यों नहीं लेते, जिस से बाह्य शारीरिक मरना दुःखदायी न हो? अब कुछ थोड़ी सी कविता सुनाने के बाद व्याख्यान समाप्त किया जायगा।

ता शानह सिफत सर न नही दर तहे-अरह।
हरगिज़ ब सरे-जुलफे-निगारे न रसी॥

प्यारे! अगर चाहो कि हम अपने माशूक़ (प्रेमपात्र) तक पहुंच जायं, तो यह मार्ग बहुत कठिन है। पहुंचना तो सम्भव है,किन्तु साधन कठिन है, देखो कंघी प्यारे के सिर पर पहुंचने के योग्य तब होती है, जब पहिले उस पर आरह चल लेता है, और वह अपना सारा तन कटा डालती है। इसी तरह जब तक तुम्हारा अहंकार रूपी सिर कंघी के समान ज्ञान रूपी आरह के नीचे नहीं रखा जायगा, अर्थात् जब तक वह ज्ञान की सहायता से कंघी के समान न बन जायगा, तब तक तुम अपने प्यारे के बालों वा सिर तक नहीं पहुंच सकते। यदि यह कहो कि अच्छा, सिर तक न पहुंचें तो कान ही तक पहुंच जायं। तो इस के विषय में भी सुनिये।

ता हम चो दुर्रे-सुफतह न गर्दी बा तार।
हरगिज़ ब बना गोशे-निगारे न रसी॥

मोती माशूक़ के कान तक उस समय पहुंचता है जब पहिले तार से छिदने का दुःख सहन कर लेता है और अपने

सारे तन को छिदवा डालता है। इसी प्रकार तब तक तुम मोती के समान ज्ञान रूपी तार द्वारा भीतर से छिद न जावोगे, तब तक अपने प्यारे के कान तक पहुंचना भी असम्भव है। अगर यह कहो कि अच्छा कान तक न पहुंच हो तो, मुँह तक ही पहुंच जायें, तो इस के विषय भी सुन लीजिये:—

ता खाक तुरा कूज़ह न साज़न्द कुलालां।
हरगिज़ ब लबे लाले-निगारे न रसी॥

अर्थात् आबखोरह, (प्याला) माशूक़ के मुँह तक उस समय पहुंचता है जब पहिले वह अपने आप को मट्टी बना डालता है और कुम्हार के यहां का दुःख सहन कर लेता है। ऐसे ही जब तक ज्ञानवान् रूपी कुम्हार तेरी अहंकृति रूपी मट्टी को कूट कूट प्याला नहीं बना लेते, तब तक तुम्हारा अपने प्यारे के मुँह तक पहुंचना भी असम्भव है। अगर यह कहो कि अच्छा! मुँह तक न सही तो हाथ ही तक पहुँच हो जावे। सो इस के विषय भी यह कहना है कि :—

ता हम चो क़लम सर न नही दर तहे-कारद।
हरगिज़ ब सरंगुश्ते-निगारे न रसी॥

जब तक लेखनी के समान तुम अपने अहंकार रूपी सिर को ज्ञान रूपी छुरे के नीचे न रख लोगे, तब तक अपने प्यारे के हाथ तक पहुंचना भी असम्भव है। देख लीजिये, क़लम भी अपने माशूक़ के हाथ में उस वक़्त पहुंचने के योग्य होती है जब वह पहिले अपना सिर कलम करा लेती अर्थात् कटवा लेती है। अगर यह कहो कि अच्छा, हाथ तक न सही तो माशूक़ के पैर तक ही पहुंचना हो जावे। तो इसके विषय में भी सुन लीजिये।

ता हम चो हिना सूदह न गर्दी तहे-संग ।
हरगिज़ ब कफे-पाये-निगारे न रसी ॥

मेहन्दी भी माशूक के पैर तक उसी वक्त पहुंचती है जब वह पहिले पहिल पिसने का कष्ट सहन कर लेती है। इसी प्रकार जब तक तू मेहन्दी के समान ज्ञान रूपी पत्थर के तले पिस न जावेगा, तब तक अपने प्यारे के पैरों तक पहुंचना भी असम्भव होगा।

पस इसी तरह से अगर तुम को भी अपने प्यारे परमेश्वर, खुदा, से मिलने की इच्छा है, तो दुन्या के क्लेश और दुःख से मत डरो। आनन्द और शान्ति तब ही प्राप्त होती है, जब तुम अपने आप को तन और मन से पृथक जान लोगे।

To stand outside the body and mind
Is the root of the peace of the mind

ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

(सभापति की अन्तिम वक्तृता का संक्षेप।)

उपस्थित वृन्द ! श्री स्वामी रामतीर्थ जी महाराज का भाषण एक मिनट कम तीन घंटे में समाप्त हुआ। इस में स्वामी जी ने लोगों को ऐसा मस्त कर दिया कि समय गुज़रते मालूम तक नहीं हुआ। आप की वक्तृता ऐसी प्रभाव शाली है कि जिस की उपमा करना मेरी जिह्वा (शक्ति) से असम्भव है। मैं ने अपनी आयु भर में ऐसा अच्छा वक्ता नहीं देखा। आप ने हर मत मतान्तर की खूबियों को दर्शाया है कि जिस से प्रत्येक व्यक्ति, हिन्दु हो चाहे मुसल्मान, खुश रहे। आप ने बिना पक्षपात के हर बात पर बहस की

अर्थात् प्रश्न उत्तर किये हैं। आप कई भाषाओं के विद्वान् हैं। फ़ारसी, अरबी, अंग्रेज़ी, उर्दू, संस्कृत आप अच्छी तरह से जानते हैं जिन का वर्णन भी व्याख्यान में हुआ है, और सम्भव है कि आप और भी भाषायें जानते हों। मगर मुझे आपसे पहिले का परिचय नहीं है। अत एव उन की बाबत कुछ ज़िक्र नहीं किया जा सकता है। आप में एक खास खूबी यह है कि व्याख्यान देते समय आप आनन्द में ऐसे मस्त हो जाते हैं कि आपकी स्वयं आकृति (शकल) उन शब्दों को बोल उठती है जो आप व्यवहार में ला रहे हैं। आप किसी शुकरिया (धन्यबाद) के मोहताज (इच्छुक) नहीं हैं, क्योंकि आप का शरीर सब के कल्याणार्थ वा परोपकारार्थ है। अत एव हम सब लोगों की ईश्वर से यह प्रार्थना है कि आप की ज़िन्दगी बहुत काल तक बनी रहे जिससे देशको लाभ पहुँचे। इतना कहने के बाद सभापति ने सभा विसर्जन कर दी।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

॥ ॐ ॥

भारतवर्ष की प्राचीन अध्यात्मता।

(२८ जुलाई सन १९०४ को दिया हुआ व्याख्यान)

महिलाओं और भद्र पुरुषों के रूप में मेरे इष्ट देव !

जब मैं अमेरिका में पहिले आया, तो मैं सियाटल (Seattle) नगर में उतरा, वहां मेरा आत्मवादियों (Spiritualists) ने स्वागत किया। उन्हों ने मेरा इस पुण्य भूमि में पहिले पहिल स्वागत किया। सियाटल नगर में इन अध्यात्मवादियों में मेरे कुछ हार्दिक और परम प्रिय मित्र भी हैं। पोर्टलैण्ड औरेगन (Portland, Oregon) में पुनः अध्यात्मवादियों ने मेरे व्याख्यानों का प्रबन्ध किया। और दक्षिण-अमेरिका में भी मैं उन अध्यात्मवादियों से मिला: ऐसे प्रेमात्माओं से मिला कि जिन्हें मैं ने अपने जीवन में पहिले ही देखा था। अमेरिका के अध्यात्मवादियों के सम्बन्ध में मेरा विचार है कि वे परम उदार और विशाल चित्त, तथा परम हमदर्द (सहानुभूति युक्त), सच्चे और असली ईसाइयों में से हैं। मुझे अब अपने स्वजनों से पुनः मिलने में बड़ा आनन्द हुआ है। मैं अब अमेरिका से शीघ्र जाने वाला हूं। और मुझे उन लोगों के समक्ष, कि जिन्हों ने इस भूमि में मेरा स्वागत किया था, एक बार फिर व्याख्यान देने का अवसर मिला है।

यहां पे मेरे प्रिय मूर्तिपूजको (Heathens) ! हम सब भाई हैं, अर्थात् हम यहां सब एक ख्याल के भ्राता एकत्रित हैं। मूर्तिपूजक (Heathen) वह है जो बन-भूमि (heath) में

रहता है, और हम इस देश में आकाश, वृक्ष और बादलों की छत्र छाया के नीचे रहते हैं, अतएव हे प्यारो! हम सब एक बार फिर मूर्तिपूजक भाई हैं। मैं अपने मूर्तिपूजक भाइयों को व्याख्यान देने में अत्यन्त प्रसन्न हूं। मैं पहिले भारत के प्राचीन अध्यात्मवाद के विषय में तुम लोगों से कुछ कहूंगा, और फिर दूसरे विषय पर आवूंगा।

भारतवर्ष का प्राचीन अध्यात्मवाद देखने में इस देश के प्रेतवादियों वा आत्मवादियों की संगठित संस्थाओं के समान कुछ नहीं है। तथापि हम प्राचीन ग्रन्थों में दिव्य दर्शी (clairvoyant) पुरुषों की शक्तियों के उदाहरण और वर्णन (allusions and references) बार २ पढ़ते हैं।

भारत वर्ष में जिसे दिव्य दृष्टि (vision of light) कहते हैं उसी के अधीन मैं काम करता, पढ़ता, लिखता और लिखाता हूं। भगवद्गीता के सम्बन्ध में तुम ने बहुत कुछ सुना है। यह एक मनुष्य, संजय से बोली गयी थी। श्री मद्भगवद्गीता के आरम्भ में तुम संजय का नाम सुनते हो। यह संजय उस युद्धक्षेत्र में एक व्यक्ति था कि जिस में अर्जुन के आगे गीता सुनाई जा रही थी। रण-भूमि से वह (संजय) लगभग दो सौ मील की दूरी पर था। इस लिये उसके गुरु महाराज ने उसे दिव्य दृष्टि नामी शक्ति का वर दिया। युद्ध-क्षेत्र से दो सौ मील की दूरी पर रहते हुए भी वह जो २ रण भूमि में हो रहा था, बतलाते जा रहा है। युद्ध के कारनामों में उस गीत का गायन भी था जो भगवद्गीता के नाम से विख्यात है। तुम्हें शायद स्मरण होगा कि इस देश में बिचौले मनुष्यों (mediums) के कुछ लेखों, कार्यों और कथनों के विषय में एक मुकद्दमा वा झगड़ा था। मेरे विचार से अत्यन्त आश्चर्य जनक और सर्वोपरि श्रेष्ठ ग्रन्थ जो इस

संसारमें सूर्य तले लिखे गये थे, इनमें से एक ग्रंथ योगवाशिष्ठ था, जिसे पढ़ कर कोई भी व्यक्ति इस मनुष्य लोक में आत्मज्ञान पाये विना नहीं रह सकता । वह ग्रन्थ भी ठीक ऐसी ही स्थिति में लिखा गया था । फिर भारत वर्ष में सब से बड़ी पुस्तक, जो रामायण के नाम से प्रसिद्ध है, वास्तविक प्रसंग वा घटनाओं के होने से सैकड़ों वर्ष पूर्व श्री वाल्मीकि ऋषि द्वारा लिखी गई थी । भारत वर्ष की कुछ पुस्तकों के लेखों के विषय ऐसे ऐसे ही वृतान्त दिये गये हैं ।

फिर, संसार भर की सब से बड़ी पुस्तक महाभारत में, जिस में चार लाख श्लोक हैं, एक महारानी की कथा है, जो स्वप्न वा ध्यान (vision) में एक अत्यन्त सुन्दर राजकुमार को देखती है और उस के प्रेम में आसक्त होती है । वह उस के प्रेम में इतनी अत्यन्त आसक्त हो गई कि उस का शरीर प्रेम के अति तीव्र भाव के कारण बीमार पड़ गया । उस के पिता ने सर्व प्रकार के वैद्य और हकीम बुलाये, परन्तु इस से कुछ लाभ न हुआ । अन्त में किसी ने मालूम कर लिया कि उस का रोग प्रेम का मुबारक (मंगल कारी) रोग है । महाराजा के मंत्री महोदय ने आकर उस की नाड़ी-परीक्षा की, और एक सर्वोपरि दक्ष चित्रकार को आज्ञा दी कि वह आकर भारतवर्ष के समस्त सुन्दर राजाओं के चित्र बनावे । यह चित्रकार एक स्त्री थी । इस से तुम को कुछ परिचय हो जायगा कि भारतवर्ष की स्त्रियां कैसी २ योग्य थीं और अपने देश में किस २ पदवी पर पहुंची हुई थीं । यह स्त्री-चित्रकार आई और दीवाल के एक तख्ते पर उस ने भारतवर्ष निवासी उस समय के बड़े २ राजाओं के चित्रों के चित्र खेंच डाले । यह मंत्री उस राज कुमारी की नाड़ी की गति को ध्यान से देख रहा था । उस नारी-चित्रकार ने श्रीकृष्ण का चित्र खींचा ।

तब उस कुमारी की नाड़ी ज़ोर से धड़कने लगी, और मंत्री कुछ ठहर गया (अर्थात् चौकन्ना सा होगया)। उस ने सोचा कि सम्भवतः वही यह मनुष्य हो जिसे उस कुमारी ने अपने ध्यान वा स्वप्न में देखा है। परन्तु उसे जान पड़ा कि नाड़ी पूरी २ तेज़ नहीं धड़की (चली) है, इसलिये उस ने चित्रकार को आज्ञा दी कि चित्र पर चित्र तुम खेंचते जाओ। तब श्रीकृष्ण के सब से छोटे पुत्र का चित्र उस ने खेंचा। और जब वह चित्र खेंचा गया, तब देखते ही देखते, नाड़ी का तो कहना ही क्या, उस का संपूर्ण हृदय धरती तक उलछने और धड़कने लगा। तब मंत्री महोदय ने यह परिणाम निकाला कि "यही वह मनुष्य है, जो इस राजकुमारी की उदासी को दूर कर सकेगा।" यह हम कोरी कथा ही नहीं किन्तु एक ऐतिहासिक तथ्य मानते हैं।

उस स्त्री-चित्रकार के संबन्ध में वहां क्या वर्णन है? क्या देशभर के समस्त राजाओं और राजकुमारों को उसने देखा हुआ था? नहीं। वह उसी दृष्टि वा अवस्था के वश में थी जिसे हम दिव्यदृष्टि कहते हैं। वह उसी सर्वरूप परमात्मा के साथ अभेदतारूपी स्फुरण (धड़कन) के इतनी आधीन थी कि प्राकृतिक पुस्तक उसके आगे मोहर लगी हुई अर्थात् बन्द नहीं रह सकती थी बल्कि उस के आगे प्रत्येक वस्तु एक खुली हुई पुस्तक के समान थी। मैं इस प्रकार के अनेक घटनाओं के उदाहरण जितने आप चाहें दे सकता हूं। इतना कहना काफी (पर्याप्त) होगा कि (इस जगत में) स्वप्नदर्शन और दृष्टि, या यों कहो कि भीतरी प्रकाश भी होता है जो इस संसार में तुम्हें समस्त ज्ञान का भण्डार बना देता है।

*वेदान्त शास्त्र बहुत से सुन्दर उदाहरणों (वा दृष्टान्तों)

द्वारा लोकप्रिय (वा लोक प्रसिद्ध) हो गया है। विश्व-विद्यालयों के प्रोफ़ैसरों (अध्यापकों) द्वारा तथा पुस्तकों के अध्ययन से जो प्रकाश (ज्ञान) तुम लाभ करते हो, उस प्रकाश से पृथक् अपने भीतर के आध्यात्मिक प्रकाश (या आभ्यन्तर चानने) को पहचानने के लिये मुझे एक उदाहरण देने दो।

ऐसा कहा जाता है कि एक समय एक राज कुमार अपने एक अति शोभायमान भवन को अद्भुत् रीति से रंगवाना चाहता था। बहुत से चित्रकार यह आशय करके आये कि इस काम के लिये वह (राजकुमार) सर्वोपरि श्रेष्ठ चित्रकार चुनेगा। राजकुमार ने उन की परीक्षा ली। दो दीवाले आमने सामने बराबर तैयार की गई, और दो चित्रकार उन दीवारों को रंगने के लिये लगाये गये। उन दीवारों पर परदे डाल दिये गये, जिस से एक चित्रकार का काम दूसरा चित्रकार न देख सके। अपने २ कार्य को समाप्त करने के लिये दो सप्ताह का समय उन्हें दिया गया। एक चित्रकार ने दीवाल पर संसार भर की बड़ी पुस्तक महाभारत के सारे दृश्यों (scenes) को अंकित कर डाला। और उस का काम अत्यन्त विचित्र और निः सन्देह प्रशंसनीय था। दूसरा चित्रकार क्या करता रहा, उस के विषय में अभी तुम्हें नहीं बताऊंगा। दो सप्ताह बीत गये और राजा साहिब अपने कर्मचारियों के साथ उस स्थल पर आये। पहिले चित्रकार की दीवाल पर से परदा उठा दिया गया। और दीवाल पर हज़ारों चित्र के चित्र खींचे हुए थे। जिस जिस ने दीवाल पर दृष्टि डाली, वह चकित हो गया। वे सब (द्रष्टा) दंग और अत्यन्त आश्चर्यान्वित दशा में खड़े रह गये। कैसा प्रशंसनीय काम था! सब देखने वाले चिल्ला

उठे, "इसी को इनाम (पारितोषिक) दे दो, जो सर्वोत्तम काम आप कराया चाहते हैं, उस के लिये इसी को चुनो, इसी को ही विजयी होने दो, इसी को इनाम मिलना चाहिये।" तब राजा ने दूसरे चित्रकार को अपनी दीवाल पर से परदा उठाने को कहा। जब परदा उठाया गया, सब लोग वहीं सांस बन्द खड़े के खड़े रह गये, उन के ओष्ट आधे खुले, उन का श्वास रुका हुआ, और उन के नेत्र आश्चर्य के साथ खुले के खुले थे। वे एक शब्द भी न बोल सके। वे मानो आश्चर्य और विस्मय के चित्र स्वरूप थे। क्यों? इस दूसरे चित्रकार ने क्या कर डाला? उस पहिले चित्रकार की दीवाल पर जो कुछ था, वह सब का सब इस दूसरे चित्रकार की दिवाल पर अंकित था। केवल अंतर इतना था कि पहिले चित्रकार के चित्र जब कि खरखरे, ऊंचे नीचे (नाहम्बार) और कुरूप वा भद्दे थे, तो इस दूसरे चित्रकार के चित्र इतने साफ, इतने सुथरे, इतने स्वच्छ, इतने कोमल, और इतने चमकदार थे कि उस पर बैठने का यत्न करने वाली मक्खी भी उस से फिसल जाती थी। आह! कितनी सुंदर वह चित्रकारी थी! और इस से बढ़ कर दूसरे चित्रकार के चित्रों में उन्हों ने यह देखा कि उनमें एक अजीब सुन्दरता थी, क्योंकि चित्र दीवाल की सितह से तीन गज भीतर अंकित थे। यह काम कैसे किया गया होगा? दूसरे चित्रकार ने अपनी दीवाल को इतना चमकीला, स्वच्छ, और हम्वार बना रक्खा था कि उस ने उसे स्फाटिक (transparent) बना दिया, और वह दीवाल सचमुच शीशा, एक दर्पण बन गई। दर्पण के समान उस में वह सब कुछ दिखाई पड़ने लगा कि जो पहिले चित्रकार ने अंकित किया था, किन्तु सब कुछ पहिले चित्रकार की दीवाल में खिचा हुआ था। तुम जानते हो कि चित्र दर्पण में उतने ही दूर प्रतिबिम्बित

होते हैं, जितनी दूर कि वे उस से बाहिर होते हैं।

इस प्रकार ज्ञान-प्राप्ति की दो रीतियां हैं। एक तो रटना या बाहिर से भीतर ठोंसना, बाह्य चित्रकारी, एक चित्र के बाद दूसरा चित्र तथा एक ख्याल के बाद दूसरा ख्याल घड़ना और सर्व प्रकार के ख्याल तथा विचार—जैसे भूगर्भ-विद्या (Geology), फलित-ज्योतिष (astrology), ईश्वर-विद्या (Theology), निरुक्त (Philology), और सर्व प्रकार के आध्यात्मशास्त्र (Ontologies) तथा न अभ्यास की जा सकने वाली विद्याएं (Non practico logies) मस्तिष्क में ठोंसना, यह ज्ञान प्राप्ति की एक विधि है। मेरा इस कथन से यह मतलब नहीं कि तुम इस रीति से ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। तुम कर सकते हो जैसे कि पहिले चित्रकार ने दीवाल पर सर्व प्रकार के रंगों का उपयोग करके चित्रों को अंकित किया था। परन्तु ऐ महाभाग ! सांसारिक ज्ञान को पूर्णतया प्राप्त करने की दूसरी ही विधि है। यह भीतर से शुद्ध करने की रीति है। यह रीति कुछ ठोंसना, या ज़बरदस्ती से भीतर घुसेड़ना नहीं, किन्तु इस ठोंसने को परे रखना है, और जो विचार आवश्यक हैं केवल उनका उपयोग करना है। जैसा कि इमरसन (Emerson) का कथन है:—

" Heave thine with nature's heaving breast
And all is clear from east to west"

अर्थ—धड़कन अपनी प्रकृति की धड़कन के संग कीजिये।
पश्चिम से पूर्व तक स्वच्छन्द सब लख लीजिये॥

सर्व रूप के साथ अपनी अभेदता अनुभव करने की यह एक विधि है। वाल्टव्हिटमेन (Walt whitman) का कथन है कि:—"जब तक तुम अपने को सर्वरूप भान नहीं करते, तब तक तुम सब को जान नहीं सकते। अर्थात् सब के साथ

अभेदता का ज्ञान ही सब के ज्ञान की ठीक २ प्राप्ति कराता है।

ये सब आदि (वा प्रथम) कार्यकर्त्ता तथा बुद्धिमान् पुरुष कहां से अपना ज्ञान लाये ? हम लोगों के यहां कितने अध्यात्मशास्त्र के प्रधानाध्यापक (Professors of Theology), ब्रह्मविद्या के आचार्य (Doctors of Divinity), पूज्यपाद (Reverends) और गिरजा घरों के मंत्री (वा मंदरों के मुख्याधिष्ठाता, Ministers) हुए हैं कि जिन्हों ने अपना सारा जीवन-काल मोटी २ जिल्द वाली पुस्तकों से भरी हुई बड़ी २ पुस्तकालयों के अध्ययन में ही व्यतीत कर डाला है । और तब भी उन में से कितने हैं कि जो ऐसे नवीन (ताज़ा), मधुर और छोटा सा उपदेश देते हैं, जैसे कि प्रेममूर्ति हज़रत ईसा के मुखमधु से निकले थे। हम लोगों में अभी भी कितने लेखक और व्याख्यानदाता हैं, परन्तु ऐ प्यारो ! अमेरिका में जितने भी व्याख्यान आज तक हुए हैं, उन में से एक भी ऐसा प्रभाव शाली नहीं हुआ जैसा कि सप्त शब्दों का उपदेश (Speech of the seven words) । तुम इस सात शब्दों के उपदेश से परिचित हो:—"Give me liberty or give me death ", मुझे स्वतंत्रता दो अथवा मुझे मृत्यु दो । अभी भी इतने गणित शास्त्र के अध्यापक (professors of Mathematics) और दर्शन शास्त्र के आचार्य्य (Doctors of philosophy) हैं। परन्तु कितनों ने उन में से न्योटन के अकेले छोटे से प्रिन्सिप्या (principia of Newton) के समान एक ग्रन्थ लिखा हो । कहां से उस (न्यूटन) ने यह सब ज्ञान प्राप्त किया ? जो गणित विद्या उस ने पुस्तकों से प्राप्त की उतनी नहीं थी जितनी कि उस ने संसार को दी। उस ने किसी ऊंचे कारण (परम मूल) से इस विद्या को

पाया। आजकल विश्वविद्यालयों में शेक्सपीयर के ग्रन्थ एम, ए के विद्यार्थियों को पढ़ाये जाते हैं। पर गरीब शेक्सपीयर किसी विश्वविद्यालय का उपाधि धारी विद्यार्थी (graduate) नहीं था। तथापि उस ने ऐसे ग्रन्थ लिख मारे कि जो लोगों को विश्वविद्यालयों से बी-ए में उतीर्ण होने के लिये अवश्य पढ़ने पड़े। आज कल बड़ा वैज्ञानिक हरबर्ट स्पेन्सर किसी कालेज का उपाधि धारी विद्यार्थी (graduate) नहीं था। किसी ने उस से पूछा था कि "क्या तुम सर्वभक्षी (Omnivorous), अर्थात् सर्व प्रकार की पुस्तकों के अधिक पढ़ने वाले तो नहीं थे?"। स्पेन्सर ने उत्तर दिया, "नहीं, भगवन्! यदि मैं दूसरों के समान अधिक पढ़ने वाला होता, तो मैं भी दूसरों के समान अत्यन्त भूल जाने वाला मूर्ख (ignoramus) होता।" अब हम देख सकते हैं कि ये आदि (प्रथम) कार्य कर्त्ता (Original workers), जिन्हों ने विज्ञान की उन्नति की, इन्हों ने अपने मूल विचारों व ख्यालों को अपने से पूर्व लिखित पुस्तकों से नहीं निकाला था। यदि ये अन्य पुस्तकों से निकाले होते, तो ये कदापि मौलिक न होते। यहां यह प्रश्न उठता है कि कहां से यह मौलिक ज्ञान (original knowledge) आता है? यह मौलिकता (originality) अपना मूल कहां से प्राप्त करती है? प्रिय सुखी और मधुरात्माओं! जानकर या अनजाने, इन शब्दों पर ध्यान दो, यह अपने भीतर के स्वर्ग स्वरूप, प्राण स्वरूप और प्रकाश स्वरूप (अर्थात् अपने सच्चिदानन्द स्वरूप) से एक होना है। इस से अतिरिक्त और कोई मूल वा कारण नहीं है। समस्त प्रकाश, प्राण (जीवन) और स्वर्गों के स्वर्ग का मूल तुम्हारा असली स्वरूप व शुद्ध आतमा है। आओ, हम एक सैकंड के लिये इस विचार वा ध्यान से मौना-

अवलम्बन करें कि "सम्पूर्ण जीवन (all life) सम्पूर्ण प्रकाश (all light) मनुष्यों के अन्दर है"। यह सब मेरे भीतर है।

अब मैं तुम्हें वह विधि बतलाता हूं कि जिसे भारतवर्ष के ऋषियों ने उस दिव्य दृष्टि के पाने में वर्ता वा ग्रहण किया था। भारतवर्ष में यह कहा जाता है कि सब वेद ईश्वर से ऋषियों द्वारा लिखे गये। इस का अर्थ यह है कि जिन लोगों ने इन वेदों को लिखा, उन्हों ने इन को उस अवस्था में लिखा था कि जब उन का देहाध्यास, परिच्छिन्न भावना (तुच्छ अहं भावना) और व्यक्तिगत भावना (आत्माभिमान) नितान्त लुप्त थे। इस लिये जिन मनुष्यों द्वारा ये वेद प्रकट हुए, वे ऋषि कहलाते हैं। परन्तु वे इन वेदों के रचयिता (जनक) नहीं हैं। ऋषि शब्द के अर्थ हैं केवल दिव्य प्रकाश का देखने वाला वा दिव्य सत्य का द्रष्टा (त्रिकाल दर्शी)। फिर हिन्दु धर्म ग्रन्थों के अन्य भागों में यह लिखा है कि सब वेद (जो वेद हिन्दुओं की बाइबल है) एक वृत्त के समान हैं, जो ओम् रूपी बीज से उत्पन्न हुए हैं। यह (ॐ) बीज कहलाता है जिस से वेदों का वृत्त उत्पन्न हुआ। हम अब इस विचार को उक्त दूसरे विचार से कैसे मिला सकते हैं, कि वेद उन लोगों से निकले वा प्रकट हुए हैं कि जिन्हों ने उन्हें लिखा नहीं, बल्कि जो उन से ऐसे स्वतः प्रकट हो गये जैसे दीपक से प्रकाश फैलता है, या पुरुष से सुगंधि निकलती है? उक्त दोनों विचार इस प्रकार से मेल खाते हैं, कि जो मनुष्य उच्च ईश्वर-प्रेरणा (higher inspiration) प्राप्त करना चाहते हैं, जिन्हों ने उस दिव्य दृष्टि को पाना चाहा, जिन्हों ने अहंकृत, व्यक्तिगत, तुच्छ, परिच्छिन्न, एकदेशी आत्म-भावना से ऊपर उठना चाहा, उन्हों ने ही ओम् (प्रणव) के उच्चारण से ईश्वर प्रेरणा और प्रकाश प्राप्त किया।

अब यह केवल गले का ही उच्चारण नहीं है, यह कुछ और भी है। जब कि ओंठ और गला इस प्रणव को शरीर से उच्चारण करते थे, तो मन इस को बुद्धि से वा चित्त से उच्चारण करता है, और चित्तवृत्तियां वा भावनायें इस को उच्च भावों (emotions) की भाषा में उच्चारण करती हैं। इस प्रकार इस पवित्र अक्षर (ॐ) का त्रिगुण उच्चारण तुम्हें उस सर्वरूप परमात्मा वा प्रकाश से मिलाप और एकता कराता है। यह विधि थी जो उन लोगों ने वर्ती थी। इस से मुझे तुम्हारे समक्ष ॐ मंत्र का अर्थ और अभिप्राय समझाने की ज़रूरत प्रतीत होती है। इस विषय को मैं शायद किसी दूसरे दिन लूं, परन्तु तुम्हारे समक्ष मुझे इस ओम् मंत्र के अर्थ और अभिप्राय रख देने (अर्थात् समझादेने) से पहिले यह अवश्य बतला देना चाहिये कि इस मंत्र में ईश्वर-प्रेरणा वा ईश्वरज्ञान इन अल्प ध्वनियों के आश्रित क्यों है।

क्या ईश्वर शब्दों का अपेक्षी वा आदर कर्त्ता है? यह प्रश्न है जो प्रत्येक व्यक्ति के मन में उठता है। मैं तुम्हें यह दर्शाऊंगा कि यह ॐ पवित्रों के पवित्र और सर्वरूप परमात्मा का असली और बहुत ही स्वाभाविक वा प्राकृतिक नाम है। यह नाम किसी भाषा विशेष का नहीं है। यदि हिन्दुओं ने इसे ग्रहण कर लिया तो इस का यह अर्थ नहीं कि यह संस्कृत भाषा का ही है। यह प्रकृति का नाम है, प्रकृति का शब्द है; यह प्रकृति का अक्षर है, प्रकृति का मंत्र है। और कुछ लोग इस कारण से शायद इसे छोड़ना (वा घृणा करना) पसन्द करें कि यह संस्कृत से या हिन्दुओं से आया है। तुम जानते हो कि कट्टरपन वा धर्मपरायणता (Orthodoxy) के अर्थ (आज कल) मेरी मति (doxy)

और तुम्हारी मति विधर्म (इतरपथावलम्बिता heterodoxy) है, इस लिये अपने मत में कट्टर लोग प्रत्येक वस्तु को जो उनके अपने अंकपत्र (label) के नाम से नहीं आती, अस्वीकार करने को तैयार होते हैं। इस लिये तुम्हें इसे, ऐसा समझ कर कि यह (मंत्र) हिन्दुओं से आता है, अस्वीकार करने की ज़रूरत नहीं। संस्कृत भाषा में यह शब्द 'ओम्' संस्कृत व्याकरण के गुण (conjugation) या विभक्ति या अन्य रूपों वा नियमों के अधीन नहीं है, जैसे कि दूसरे संस्कृत शब्द उन के अधीन हैं। इस लिये यह संस्कृत शब्द नहीं है। यह स्वयं अकृतक (स्वतः प्रकट हुआ २, genuine) और प्रकृति का शब्द है। हिन्दुओं ने इस को ले लिया, अर्थात् साधन रूप से ग्रहण कर लिया। प्रत्येक बच्चा इस ध्वनि के साथ उत्पन्न होता है। वह कौन सी पहिली ध्वनि है जिसे बच्चा (उत्पन्न होते ही) बोल उठता है? यह या तो अम् या उम् या ओम् या मा है। अब आह, ओह, उम्ह (अर्थात् अ, ऊ, म्) इन तीन मूल ध्वनियों के मेल से ओम् बनता है। फ्रेंच (फरांसीसी) भाषा में जब आवाज़ें ओह और आह (oh and ah) इकट्ठी मिलती हैं, तो वे 'ओह' आवाज़ में संयुक्त हो जाती हैं, इसी प्रकार ये ध्वनियां जब संस्कृत में इकट्ठी मिलती हैं, तो वे वैसे ही संयुक्त हो जाती हैं। इस लिये ध्वनि आह ओह (अ, ऊ) के मेल से यह अक्षर ॐ होता है। और हरेक राष्ट्र का हरेक बालक इन ध्वनियों के साथ उत्पन्न होता है जिन ध्वनियों को वह दूसरे लोक से लाता है। फिर हम यह देखते हैं कि जब मनुष्य बीमार है, तो वह कौन सी ध्वनि है कि जिस के उच्चारण से वह आराम (विश्रान्ति वा सुख) पाता है? वह ऊँह, ऊँह, ओह्म वा ओम् बोलता है, और उस में वह

आराम पाता है। एक बीमार मनुष्य, एक असह वेदना (तीव्र पीड़ा) से पीड़ित मनुष्य, इस ध्वनि में अपना (आराम रूप) ओम् पाता है। इस संसार में जहां कहीं बच्चे खुश हैं, किसी जगह अत्यन्त प्रसन्न होते हैं, उनकी प्रसन्नता, वा उन का हर्षोन्माद (ecstasy) ओम् ध्वनि के उच्चारण में स्पष्ट होता है। यह वही है। यह वहीं ध्वनि है जो आप के मन की उस दशा की द्योतक है कि जिस में आप इस तुच्छ, स्थानीय, अहंकार युक्त, व्यक्ति गत, क्षुद्र, और परिच्छिन्न भावना से परे या ऊपर उठे हुए होते हैं। जब कभी तुम उस एकदेशीय भावना से उठते हो, जिस भावनानुसार कि तुम अपने आपको लगभग ५ या छे फुट की छोटी सी सीमा में बद्ध वा परिच्छिन्न मानते हो, कि जिस सीमा के उत्तर में सिर है, जो कभी २ टोपी या पगड़ी से ढका होता है, और दक्षिण में एक जोड़ी जूते (पहिने पैर) हैं; जब तुम इस प्रकार की तुच्छ अहंकार युक्त भावना से ऊपर उठते हो, तब ॐ मंत्र की स्वाभाविक अर्थात् असली ध्वनि तुम्हारे द्वारा प्रकट होती है। फिर हम यह देखते हैं कि संसार भर की सारी भाषाओं में ओम् एक बड़ा प्रधान स्थान वा पद पाता है। पहिले सर्वज्ञ भाव ओम् के साथ आरम्भ होता है (फिर अनुनासिक स्वर) और ऐसे ही फिर सर्व व्यापक और सर्व शक्तिमान भाव। सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान और सर्व व्यापक यह ईश्वर के अत्यन्त मधुर और सर्वोपरिश्रेष्ठ नाम हैं, और ये सब ईश्वर के असली नाम ॐ के साथ आरम्भ होते हैं। अपनी प्रार्थनाओं में जब तुम उस स्थल वा स्थान पर आते हो कि जहां सम्पूर्ण वाणी रुक जाती है, तब तुम एमिन (amen) शब्द उच्चारते हो; अरबी भाषा में हम उसे आमिन कहते हैं, फारसी में आमीन कहते हैं, इस प्रकार हिन्दुस्तानी या

अंग्रेज़ी भाषा में यह एमिन या आमिन (amen or amin) है। हम सभ्य लोगों की मुख्य २ भाषाओं की प्रार्थनाओं में इसे पाते हैं। जब वे उस स्थल पर आते हैं कि जहां सब वाणी रुक जाती है, केवल मौन बोलता है, अर्थात् मौन अवस्था प्रकट होती है; जब तुम उस पवित्र मौन अवस्था में प्रविष्ट होते हो कि जिस को हिन्दुओं ने—

"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।"

इस वाक्य से प्रकट किया है, जिस का अर्थ यह है कि "जहां से सम्पूर्ण वाणी सहित मन के ऐसे वापिस लौट आती है जैसे एक गेंद दीवाल से टक्कर खा कर वापिस लौट आता है"। जब तुम उस अवस्थामें पहुंचते हो, तो यह एमन (amen) शब्द है, जो तुम को समग्र संसार में ले जाता वा उस से परिचय दिलाता है। एमन केवल ओम् वा ओम् का अपभ्रंश रूप है। इस लिये ओम् ईश्वर का सब से ठीक वा असली नाम है, पवित्रों के पवित्र रूप परमात्मा का सर्वोपरि शुद्ध नाम है।

इससे बढ़ कर, क्या तुमने कभी भी ऐसी ध्वनि देखी व विचारी कि जो तुम्हारे श्वास, तुम्हारे प्राणायान के साथ मिली रहती वा मिल कर निकलती हो? हम इसे अभी देखेंगे। यह 'सोहं', 'सोहं' है। अकेले में और ऊंचे श्वास लो, तुम देखोगे कि तुम्हारे श्वास की आवाज़ वा ध्वनि 'सोहं' है। संस्कृत भाषा में 'सोहं' का अर्थ होता है। और कृपया इसे स्मरण रखिये, यदि संस्कृत भाषा में इस 'सोहं' शब्द का अर्थ है, तो अंग्रेज़ी भाषा को उसे ग्रहण कर लेना चाहिये। शब्दतत्त्व-शास्त्र (Philology) से सिद्ध होता है कि इंग्लिश, फ्रेंच, स्केण्डिन नेवियन, रशियन, ग्रीक, और परशियन भाषायें (English, French, Scandinavian, Russian, Greek, and

Persian languages), ये सब की सब संस्कृत भाषा की पुत्रियां हैं। सो पे पुण्यात्माओं। संस्कृत तुम्हारी अंग्रेज़ी भाषा की माता है, इसलिये यदि वह (अर्थ) माता का है, तो पुत्रियों को उसे क्यों न लेना चाहिये ? इस प्रकार संस्कृत भाषा में सोहं का अर्थ है। 'सो' का अर्थ वह और 'अहं' का अर्थ मैं हूं, अर्थात् 'मैं वह हूं'। उस भाव से मिली हुई सांस लेने की एक विशेष विधि है। तुम्हारे श्वास की आवाज़ 'सोहं' में दो व्यंजन हैं,और शेष स्वतंत्र आवाजें हैं। पहिले व्यंजन को हटा दो, अर्थात् 'ह' को बीच में से निकाल दो, यह ओम् हो जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य का श्वास, या इस संसार में भीतर का जीवन दो आवाजों का बना हुआ है जो व्यञ्जन हैं, और जिस पर दूसरे अवलम्बित हैं। इन अवलम्बित या व्यंजन आवाजों को दूर कर दो, तब आत्मा या तुम्हारे श्वास का जो स्वतंत्र जीव है, वह ओम् है। इस प्रकार तुम्हारे श्वास का जीवन वा जान ओम् है। जो ध्वनि तुम्हारे श्वास की जान है, वह ओम् है। तब ईश्वर परमात्मा के लिये कि जो समस्त जीवों वा आत्माओं को प्रकाशता है, तथा अपने भीतर के स्वर्ग के लिये यह बहुत ही स्वाभाविक नाम है।सब जीवात्माओं की आत्मा, सब जीवन का जीवन वा सब प्राणों का प्राण ओम् है।

ओम् के उच्चारण से जो उच्चतर स्फुरण (vibration) और उच्चतर अवस्था प्राप्त हो जाती है, उस के लिये मैं वैज्ञानिक हेतु आगे स्पष्ट कर सकता हूँ।

तुम जानते हो, आवाज़ें (स्वर) दो प्रकार की होती हैं। तुम्हारी व्याकरण की पुस्तकें उन को स्पष्ट और अस्पष्ट या सार्थक तथा निरर्थक (articulate and inarticulate) कहती हैं। संस्कृत में हमारे हाँ वह आवाज़ (स्वर), जो

वर्णमाला के अक्षरों से उच्चारण की जा सकती है, सार्थक या स्पष्ट (articulate) है, और जो इस से इतर स्वर है, वह निर्थक, अस्पष्ट वा ध्वनि (inarticulate or intonation) है । आवाज़ों के दो भेद वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक (alphabetical and intonational) हैं । वर्णात्मक या सार्थक ध्वनियां उन विषयों से सम्बन्ध रखती हैं जिन का व्यवहार मस्तिष्क के ज्ञान से होता है । और ध्वन्यात्मक आवाज़ें वा स्वर वह हैं जिन का व्यवहार आधुनिक काल के अन्तःकरण-शास्त्रज्ञों (Psychologists) की भाषा में निजी मन, हृदय या भावों से होता है । हम देखते हैं कि वर्णात्मक वा सार्थक आवाज़ें परिमित श्रेणी वा वर्ग के लिये कुछ अर्थ रख सकती हैं (सब के लिये नहीं) । यहां मैं आप से अंग्रेज़ी भाषा में बोल रहा हूँ । जो इस अंग्रेज़ी भाषा को नहीं जानते हैं, उन के लिये यह बात चीत ग्रीक अर्थात् निर्थक होगी । इस लिये जब मैं अंग्रेज़ी बोलता हूँ, तब वही लोग मुझे समझ सकते हैं कि जो उसी प्रकार की बनावटी रीति से शिक्षित हैं कि जिस में किसी भाषा विशेष को सीखने वाले शिक्षित किये जाते हैं । उस से इतर दूसरा नहीं समझ सकेगा । यहां ही एक ऐसा मनुष्य मेरे पास आता है, कि जो मेरे साथ फारसी, रूसी या संस्कृत भाषा में बोलता है, पर तुम उसे नहीं समझते हो । वह अंग्रेज़ी भाषा नहीं जानता है और चिल्लाने लग जाता है । तब (उस के चिल्लाने या रोने से) तुम उसे तत्काल समझ जाते हो कि वह किसी ज़रूरत में है, वह किसी विपद् में है । एक मनुष्य आता है जो तुम से संस्कृत, फारसी, या जापानी भाषा में कुछ कहता है, तुम उसे नहीं समझते । वह हंसने पर हंसने लगता है, अर्थात् वह दोहरा हो कर हंसता है, और तुम

उसे समझ जाते हो। पस, यह चिल्लाना (रोना) या हंसना, क्या यह वर्णात्मक आवाज़ (स्वर) थी, या ध्वन्यात्मक? इस आवाज़ वा स्वर ने अपना काम कर दिखाया (अर्थात् इस ने अपना प्रभाव तो सीधा मन पर डाल दिया)। शिशु तुम से तुम्हारी भाषा में नहीं बोल सकता, परन्तु कहते हैं कि प्रेम की भाषा सर्वत्र समझी जाती है। एक बिल्ली आती है, और तुम उसे निकाल देना वा भगाना चाहते हो। तुम उसे फारसी, संस्कृत, अरबी, अंग्रेजी में बोलो, वह नहीं समझती है; परन्तु अपने हाथों से तुम ताली बजाओ, और वह तत्काल भाग जाती है। यह ध्वन्यात्मक आवाज़ या ध्वनि थी, यह वर्णात्मक नहीं थी, पर इस ने काम तत्काल कर दिखाया। इस प्रकार हम देखते हैं कि ध्वन्यात्मक भाषा सार्वलौकिक वा विश्वव्यापी है, और वह ऐसी भाषा है जिस का उन साधनों वा कारणों से सम्बन्ध है कि जो मस्तिष्क से कहीं अधिक गहरे वा गम्भीर हैं। १७ वीं और १८ वीं शताब्दियों के दार्शनिक लोग (philosophers) मनुष्य के शासक-केन्द्र को किसी जगह मस्तिष्क में स्थान देते चले आ रहे हैं। परन्तु आज इन दार्शनिक लोगों की भूल जान ली गई है, और एक बार पुनः तत्त्व-विचारात्मक जगत् (philosophical world) यह जानने लग गया है कि वह (केन्द्र) हृदय के नाड़ीगुच्छक केन्द्र (gangleonic centre) में है। वहां मनुष्य का शासक-स्थान है। इस लिये हम कहते हैं कि ध्वन्यात्मक भाषा मस्तिष्क या बुद्धि से भी किसी बहुत गहरे स्थान से निकलती है। मैं ने एक महिला को यह कहते सुना कि "तुम अपने गिरजाघरों में मुझे उपदेश नहीं दे सकते, परन्तु तुम वहां मेरे लिये भजन गा सकते हो। यह तुम सब

मानोगे कि गिरजा घरों में धर्मोपदेशों की अपेक्षा तुम गीत से अधिक आनन्द लेते हो। यह कैसे है? जब तुम सब उदास हो, और कोई व्यक्ति आकर बाजा (piano) बजाने लगता है, और स्वरों का एक ताल (harmony) उत्पन्न करता है, तो तुम तत्काल शान्त चित्त हो जाते हो। पूर्वी औरोरा (Eastern Aurora) में मेरा एक मित्र है। उस के कारखाने में जब मज़दूर लोग किञ्चित काम छोड़ बैठते वा असम्बन्ध होते हैं और उन में परस्पर प्रीति की कमी और विरोध की उत्पत्ति हो जाती है, तो वह काम को फौरन बंद कर देता है, और किसी को बाजा बजाने के लिये कह देता है, और एक आध घंटे में हरेक बात ठीक हो जाती है। तुम जानते हो कि राग लोगों पर कैसा जादू भरा असर करता है। कुछ फ्रांसीसियों को फ्रैंको-प्रशियन युद्ध (Franco-Prussian war) में युद्ध विषयक गीत सुनाये गये, और सब के सब गृहविरहार्त (home-sick) होगये। और ग़ैरहाज़री की छुट्टी के लिये प्रार्थनापत्र पर प्रार्थना पत्र अफसरों (पदाधिकारियों) के पास आये। सब के सब गृहविरहार्त थे, युद्ध न कर सकते थे। तुम जानते हो कि युद्ध में गीत लोगों को कैसे उभारता है। तुम ट्राय नगर (city of Troy) के सम्बन्ध में सुना है कि वह अपौलो (Apollo) के गीत से प्रकट हुआ था। उस के राग से नगर प्रकट हो आया था। तुम सब उन मोहने वाली सुन्द्रियों (Sirens) को जानते हो कि जो समुद्र के एक द्वीप में रहती थीं, और जो यात्री लोग समुद्र यात्रा करते हुए उधिर से गुज़रते थे, यों ही वे उन के गीत को सुन पाते, त्यूं ही उस निर्दयी द्वीप को वे खिचे जाते थे, जहां वे जानते थे कि तीन दिन तक उन मोहिनी सुन्द्रियों ने उन से भोग

विलास करना है, और तत्पश्चात् वे काट कर खा लिये जायँगे। तथापि वे (उन के राग के प्रभाव को) न रोक सके, अर्थात् तब भी वे उस द्वीप में जाने से (राग के कारण) न रुक सके। ऐसा गाने का प्रभाव है।

यह इस संसार के प्रलोभनों को दर्शाता है। लोग यह जानते हैं कि जब प्रलोभन उन पर हावी (प्रवल) होते हैं, तो वे तीन दिन तक भोग विलास करते हैं और फिर स्वयं उन से खा लिये जाते हैं। फिर भी वे (लोग) उन के प्रभाव को रोक नहीं सकते, अर्थात् फिर भी लोग प्रलोभनों का मुकाबला नहीं कर सकते। यह कहा जाता है कि जब ओरफियूस (Orpheus) गाता था, तब नाले और बहती नदियां उसे सुनने को रुक जाती थीं। एक ओर सिंह और दूसरी ओर गाय, एक ओर भेड़ और दूसरी ओर भेड़िया खड़े रहते, किन्तु उस स्वर-ताल में वे अपने को भूल जाते थे। तुम उस सेन्ट सीसिलिया (st Cecilia) के विषय जानते हो कि जो स्वर्ग के दूत (angel) को नीचे पृथिवी पर खेंच ले आई। और तुम ने यह भी सुना होगा कि असकन्दर की दावत (Alexander's feast) में उस रागी (गाने वाले) के संबन्ध में सुन कर, कि जिस ने सकन्दर को ईश्वर से संयोग वा अभेद करा दिया था, कबि ने यह कहा कि

"He raised the mortal to the skies,
And she (St Cecilia) brought an angel down."

अर्थात् अस्कन्दर की दावत में गाने वाला (गवैया) तो मर्त्य को द्यौ वा स्वर्ग में ले गया, और वह सेंट सीसिलिया स्वर्ग के प्राणी (दूत) को स्वर्ग से नीचे पृथिवी पर ले आई।

इस कारण यह गवैय्या (गाने वाले) सेंट सीसिलिया से

बहुत श्रेष्ठ था। राग वा संगीत क्या वह वर्णात्मक है या ध्वन्यात्मक ? स्पष्ट रूप से ध्वन्यात्मक है। वाह, क्या इस का आश्चर्य जनक प्रभाव है ! विज्ञान शास्त्र सिद्ध कर सकता है कि खास २ ध्वनियों का खास २ प्रभाव क्यों पड़ता है। और विज्ञान यदि इसे न भी सिद्ध कर सके, तो भी यह तथ्य तो तथ्य ही है कि ध्वनी से अद्भुत प्रभाव पड़ता है जिस का आश्चर्य जनक परिणाम उत्पन्न होता है। तुम्हारे मन में यह तथ्य रूप से बना रहता है।

इस लिये मैं कहता हूं कि ध्वनि 'ओम्' के उच्चारण के साथ सम्बन्ध रखती है, और अनुभव ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि तुम्हारे जीवात्मा को सर्व स्वरूप परमात्मा के साथ अभेद कराने में इस ध्वनि (प्रणवोच्चारण) का अद्भुत प्रभाव पड़ता है। निःसन्देह इसका अद्भुत प्रभाव होता है। यदि विज्ञान-शास्त्र आज इसे सिद्ध नहीं कर सकता, तो शास्त्र को अभी और उन्नति करने दो, और कुछ समय पश्चात् वह इसे समझाने के योग्य हो जायगा। इस बीच में अर्थात् तब तक तो यह तथ्य तथ्य ही बना रहेगा। इसलिये युगों के इस अनुभव की बुन्याद पर–मेरा अभिप्राय निजी अनुभवों से है–मैं तुम्हारे समक्ष यह वैदिक ज्ञान का खज़ाना रखता हूं। इस प्रकार हिन्दु लोग भीतर की, आध्यात्मिक ज्योति की, दिव्य दृष्टि की उच्च अवस्था को प्राप्त हुए थे।

Peace like a river flows to me.

Peace like a river flows to me,
Peace as an ocean rolls in me,
Peace like the Ganges flow,
Is flows from all my hair and toes,

O fetch me quick my wedding robes,
White ro es of light, bright rays of gold,
Slip on, lo! once for all the veil to fling!
Flow, flow, O wreaths, flow fair and free.
Flow, wreaths of tears of joy, flow free.
What glorious aureole, wondrous ring.
O nectar of life! O magic wine.
To fill my pores of body and mind!
Come fish, come dogs, come all who please,
Come powers of nature, bird and beast.
Drink deep my blood, my flesh do eat.
O come, partake of marriage feast,
I dance, I dance with glee
In stars, in suns, in oceans free,
In moons and clouds, in winds I dance,
In will, emotions, mind I dance.
I sing, I sing, I am symphony.
I'm boundless ocean of Harmony,
The subject—which perceives,
The object—thing perceived
As waves in me they double,
In me the world's a bubble
Om ! Om !! Om !!!.

शान्ति नदी के समान मेरी ओर बह रही है।

शान्ति नदी के समान मेरी ओर बह रही है।
शान्ति समुद्र वत् मुझ में लुढक रही है॥
शान्ति पवित्र गंगा सम बहती है।

शान्ति मेरे सिर और पैर नख से बहती है।
ओ मेरे विवाह का चोला मुझे ला दो (वह चोला कैसा है?)
प्रकाश का श्वेत-वस्त्र (पोशाक), स्वर्ण की उज्ज्वल किरणें।
देखो वह फिसला! एक ही बार गिरने को वह परदा
फिसला।
ओ हारो! बह जाओ, बह जाओ, अच्छी तरह और
स्वतंत्रता से बह जाओ।
बह जाओ, हर्षाश्रुओं के हारो! आज़ादी से बह जाओ।
ओ कैसी ओजस्वी मुखमंडल की कान्ति, कैसी अद्भुत
(सुलेमानी) अंगूठी है।
ओ जीवनामृत! ओ जादु के प्रभाव वाली मद!
मेरे तन और मन के रोमों में भरने को,
ऐ मत्स्य, श्वान, और जो चाहो सब कोई, आवो,
ऐ प्रकृति की शक्तियों, पक्षी और पशु! आवो,
मेरे रक्त को खूब पीवो और मेरे मांस को खूब खावो।
ओ आवो, मेरे इस विवाह-भोजन का भोग लगावो।
मैं नाचता हूं, प्रसन्नता से नाचता हूं।
तारों, सूर्यों और समुद्रों में मैं आज़ादी से नचा रहा हूं।
चन्द्र मेघ और पवन में मैं नाच रहा हूं।
इच्छा में, तरंगों में, और मन में मैं नाच रहा हूं।
मैं गाता हूं, मैं गाता हूं, मैं साम्य हूं।
मैं एकता का अपरिच्छिन्न समुद्र हूं।
कर्त्ता—जो द्रष्टा वा ज्ञाता है,
विषय - जो पदार्थ ज्ञेय है, अर्थात इन्द्रियों द्वारा देखा वा
जाना जा रहा है,
जल-तरंग सम वे मुझ में दुगने होते हैं।
मुझ में ही दुन्या एक बुदबुदा है।

सभ्य संसार पर भारत वर्ष का अध्यात्म-ऋण

(जुलाई २९ सन् १९०४ में दिया हुआ व्यख्यान)

आज प्रातः कुछ विद्यार्थियों से बोलते समय एक वचन इस मुँह से निकल गया कि :—"मुझे नितान्त स्मरण नहीं कि मैं कभी पैदा हुआ था। निःसन्देह मैं कभी पैदा नहीं हुआ था, और संसार में ऐसी कोई शक्ति नहीं कि जो मुझे निश्चय करा सके कि मैं कभी मर सकता हूं।" भारत वर्ष में बड़ी भारी सभा में व्याख्यान देते समय मैं एक विषय पर बोला जिस से राज-नीति की गंध आती थी। श्रोतागण में न्यायाधीश (जज लोग), वकील, और बड़ी २ पदवी वाले सरकारी कर्मचारी थे। व्याख्यान हो चुकने के बाद वे लोग आये और यह कहते हुए प्रतिवाद (वा मना) करते रहे कि "स्वामी जी! भविष्य में ऐसा व्याख्यान कभी न दीजिये। क्योंकि इससे भय है कि आप का शरीर कारागृह (जेल) में डाल दिया जावें या फांसी लटका दिया जाय।" इस पर राम का यह उत्तर था, "प्रियवरो! मैं जूडास इसकेरियट (Judas Iscariot) का काम नहीं कर सकता, और सत्य के ईसामसीह को चांदी के तीस टुकड़ों (रुपयों) के बदले नहीं बेच सकता। क्योंकि कोई व्यक्ति मुझे यह निश्चय नहीं करा सकतो कि इस संसार में ऐसी तेज़ तल्वार भी कोई है कि जो मेरे आत्मा को काट सके, या ऐसा तीक्ष्ण शस्त्र भी कोई है कि जो मुझे घायल कर सके; अमर वस्तु वा अविनाशी आत्मा कभी न उत्पन्न होने वाला, मारा जाने के असमर्थ, कल और आज एक समान रहने वाला यह मैं हूं। मैं क्यों मान जाऊं?

जो वचन तुम सुनोगे, संभव है कि उसके सुनने की बहुधा तुम में न आदत हो, और शायद वे वचन तुम्हें अजीब ज्ञान पड़ेंगे, किन्तु सत्य के ऋण भार के कारण मैं उन को स्पष्ट करने में विवश हूं।

भारतवर्ष के सम्बन्ध में अनेक कथाएं वा गाथाएं इस देश में फैली हुई हैं। अभी एक दिन मिनन्थापोलिस (Minneapolis) में व्याख्यान दे चुकने के बाद एक महिला राम के पास आई और बोली " मिस्टर स्वामी! क्या महिलायें अभी तक अपने बच्चों को श्री गंगा में मगर के आगे नहीं गिराती वा फेंकती हैं ? मैं ने उस महिला को उत्तर में कहा, कि "भगवती! मैं भी श्रीगंगा जी में फेंका गया था, परन्तु तुम्हारे रचित जोनह (Jonah) के सदृश मैं तैर निकला।" यथार्थ में श्री गंगा जी के निकास-स्थान (गंगोत्री) से गंगा जी के मुहाने वा मुख तक मैं पैरों चला हूं। तुम में से जिन्होंने मेरे साथ पैदल चलने का आनन्द लिया है, वे जानते हैं कि यह छोटा सा शरीर प्रति दिन ४० मील चल सकता है। मैं तुम से कहता हूं कि गंगा के तट पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक घूमते हुए मैं ने उस पवित्र नदी को इतना स्वच्छ, शुद्ध, घोर तेज और अत्यन्त वेगवती पाया कि विज्ञान के नाम तले उस में कोई मगर या घड़ियाल नहीं रह सकते थे। मगरमच्छ या घड़ियाल तो रेतीले और गंदली नदियों में रहते हैं, और उस नदी (गंगा) में (विशेष करके पर्वतों में) तो कोई भी मगर उंगली से दर्शाया नहीं जा सकता था। कहानी रचने वालों के मधुर हृदयों को धन्यवाद ! इस देश में भारतवर्ष के सम्बन्ध में ऐसे समाचार प्रचलित हैं।

उस दिन मुझे सियाटल, वाशिंगटन (Seattle, Washington) से एक पत्र मिला जो एक विचित्र मामले

(मुक़द्दमे) में फंसे हुए हिन्दु भाई के हाथ का लिखा हुआ था। एक रात वह किसी प्रेत-वादियों की सभा (Spiritual Society) के कमरों से घर आ रहा था और एक गाड़ी में बैठ गया। उसी गाड़ीमें एक लड़की भी बैठी थी। वे एक ही साथ बैठे गये। जब लड़की गाड़ी से उतरी, उसी समय वह भी गाड़ी से उतरा, क्योंकि वह उसी लड़की के पड़ोस में रहता था। एक घंटे के बाद एक पुलिस वाला आया और उस विद्यार्थी को उसने गिरिफ्तार कर लिया। दो घंटे तक वह विद्यार्थी जेल (कारागृह) में रहा। दूसरे दिन उस का मुक़द्मा पेश हुआ। लड़की ने उस के विरुद्ध यह दावा दायर किया था कि वह विद्यार्थी मेरी ओर उन वेधिनी और काली प्रेत-वादी वाली आंखों से तकता था, और मुझे ऐसा भान होता था कि मानो मैं संमोहित (hypnotized) हुए जा रही हूं, और मैं इस से डर गई।" हे ईश्वर! विचारे भारतवासी अमेरीका आने से पूर्व अपनी आँखें कहां रख आया करें? इस देश के कुछ भागों में भारतवासियों (हिन्दुओं) के सम्बन्ध में ऐसे २ भद्दे विचार वा भाव हैं।

(भारतवर्ष के) उज्ज्वल पक्ष [bright side] के सम्बन्ध में मैं तुम्हारे समक्ष प्राचीन भारत वर्ष के अनन्त वैभव वा धन के विषय उदाहरण पर उदाहरण दे सकता हूं। यूरोप में ऐसे २ समाचार प्रचलित थे कि "भारतवर्ष में घर स्वर्ण के बने हुए हैं और सड़कें चान्दी की"। भारतवर्ष के विषय ऐसे ऐसे समाचारोंने यूरोप को भारतके वैभव वा धन पाने के लिये उत्सुक और उत्कंठित वा व्याकुल बना दिया, और भारतवर्ष के विजयार्थ यूरोप के बहुत से देशों से लोग आये। कुछ लोगों ने उत्तर-पश्चिम के मार्ग से जाना चाहा और (उसी मार्ग से) भारत में आये। तुम्हारा कोलम्बस [Columbus]

पहिले, भारत के लिये नया मार्ग ढूँढ निकालने को निकला था, जबकि वह (इस ढूँढ में) इस सुहावने (वा पुण्यभूमि) अमेरिका में आ गिरा। इस प्रकार एक समय भारतवर्ष में आकर्षण था, कम से कम वहां तक ज़रूर था जहां तक उस के धन से संबन्ध है। मुझे तुम को केवल फारसी और ग्रीक लेखकों के वृतान्तों का हवाला देना है कि जो उन्हों ने भारतवर्ष के मन्दिरों के संबन्ध में दिये हैं। एक मन्दिर में दस हज़ार नौकर नियुक्त थे, और छतों में हीरे और लाल लगे हुए थे। भारतवर्ष के धन संबन्धी वृत्तान्तों के सिद्ध करने में यदि तुम कुछ ऐतिहासिक प्रमाण चाहते हो, तो मैं तुम्हें एडमंड बर्क [Edmund Burke] के वह व्याख्यान पढ़ने को कहूंगा कि जो (व्याख्यान) वारन हेस्टिंग और लार्ड क्लाइव [Warren Hastings and Lord Clive] के सम्बन्ध में हैं।

मैं भारतवर्ष की बुद्धि विषयक सम्पत्ति के विषय बहुत कह सकता हूं। भारतवर्ष में मैं ने एक मनुष्य देखा कि जो स्मरण शक्ति के बहुत आश्चर्य जनक विचित्र काम करता था। उसके गिर्द आधे चक्कर में लगभग ५० या ६० मनुष्य एक कमरे में बैठ जाते थे। प्रत्येक मनुष्य को कहा जाता था कि जिस पुस्तक को वह चाहे उस में से वाक्य निकाल कर अपने आगे रख ले। कुछ वाक्य उन पुस्तकों से निकाले कि जो अंग्रेज़ी, अरबी, हिन्दुस्तानी और ऐसी ही अन्य भाषा में लिखी हुई थीं। यह मनुष्य स्वयं अंधा था। प्रत्येक मनुष्य ने उस को अपने २ वाक्य की पंक्तियों की संख्या बतला दी। तब वारी २ प्रत्येक मनुष्य ने (अपने २ वाक्य की) एक २ पंक्ति एक २ वक्त पर दे दी। पहिले मनुष्य ने, मान लीजिये, अपने बीस पंक्तियों वाले वाक्य की पहिली

पंक्ति दे दी; दूसरे ने अपने तेरह पंक्तियों वाले वाक्य की पाँचवीं पंक्ति (लाइन) दे दी, इत्यादि। तब दूसरी बारी आई जब सब लोगों ने एक एक लाइन (पंक्ति) पुनः दे दी। इस प्रकार गड़बड़ और अनियम रीति से सब पंक्तियां उस अन्धे (blind prophet) को दे दी गई। तब तेरहवीं बार में वह (अन्धा) जब उस मनुष्य तक पहुंचा जिस ने कहा था कि मेरे वाक्य की १३ पंक्तियां हैं, तो उस ने कहा, ऐ अमुक महाशय! तुम्हारे वाक्य की पंक्तियों की संख्या समाप्त हो गई। उसने अपने मन ही मन में इन सब पंक्तियों को उनके ठीक क्रम में तरतीब देकर उसके पूर्ण फिकरे (वाक्य) को बिना कोई गलती के आद्योपान्त दुहरा दिया। इसी प्रकार उसने सब मनुष्यों के वाक्यों को पूर्ण करके दुहरा दिया।

मैं तुम से कुछ अन्तः करण सम्बन्धी अनुसंधान के संबन्ध में अब कहता हूं। एक स्वामी अमेरीका में आया था जो अपने आप को ५ मिनट तक अचेतनावस्था में डाल सकता था। परन्तु हिमालय में मुझे बहुत से स्वामियों की भेंट हुई कि जो अपने आप को छे मास तक प्रत्यक्ष मृतकावस्था में रख सकते हैं। यह छे मास तक की प्रत्यक्ष मृत्यु के बाद मृतोत्थापन का एक उदाहरण है। इन में का एक स्वामी सन्दूक में बन्द करके भूमि में गाड दिया गया, और छे मास के बाद खोद कर भूमि से निकाला गया और कुछ विशेष विधियों से जिन्हें उस ने मनुष्यों को उसके अपने शरीर पर वर्तने के लिये कहा था, वह पुनः जीवित हो गया। ऐ पुण्यात्माओं! ज़रा इसपर विचारो। एक मनुष्य तीन दिनकी प्रत्यक्ष मृत्यु के बाद पुनः जीवित हो गया। और इस कारण प्रायः समस्त यूरोप ने अपना नाम और विश्वास उस की व्यक्ति के साथ जोड़ लिया। भारतवर्ष में मनुष्य छे मास की

प्रत्यक्ष मृत्यु के बाद पुनः जीवित हो उठते हैं, और हम इस काम की उतनी ही क़द्र करते हैं जितनी कि उचित है। यह (पुनः जीवित हो उठना) कोई अध्यात्मता (Spirituality) नहीं है, बल्कि यह एक वास्तव में देह-धर्म विद्या तथा अन्तःकरण संबन्धी विधि वा एक वैज्ञानिक विधि है। यदि आधुनिक काल के डाक्टर लोग इस विधि को नहीं जानते तो उन्हें अपने विज्ञानके ज्ञान (बोध) में उन्नति करनी चाहिये। पर हम इस काम की उस की योग्यतानुसार ही क़द्र करत हैं।

इसी विषय के विध्यात्मक पक्ष [positive side] को पकड़ने से पहिले यहां मैं कुछ शब्द इसके निषेधात्मक पक्ष [negative side] में कहने को विवश हूं। निषेधात्मक पक्ष यह है। उस दिन एक भद्र पुरुष आकर बोला :—"स्वामी! अपने शास्त्र वा धर्म से हमें दिक़्क़ मत करो। क्या यह प्राचीन वा अप्रचलित नहीं है?" मानो सत्य भी कभी पुराना वा अप्रचलित होता है! मानो सत्य भी परिवर्तन शील और अस्थिर है! मैं ने उस से कहा :—"भाई! क्या तुम अपनी और अमेरिका की विभूति तथा आज कल के यूरोप की उन्नति का कारण जानते हो?" मैं ऐसा उत्तर देने में मजबूर था क्योंकि उसने कहा था कि "तुम्हारा धर्म अप्रचलित वा पुराना है।" हमारा धर्म जीवित है, जीवित। हमारा धर्म विध्यात्मक पक्ष पर ज़ोर देता है, यद्यपि तुम्हारा मत निषेधात्मक पक्ष—"तुम्हें यह नहीं करना चाहिये"—पर ज़ोर देता है। मैं ने कहा, ऐ पुण्यात्मा! आओ, आज हम अमेरिका के वैभव का कारण जाँचें और (इस बात को भी देखें कि) अमेरिका का क्या धर्म है। मैं ने बताया कि तुम्हारा वा अमेरिका का धर्म तो गर्दन के इर्द गिर्द एक टूना या तावीज़

मंत्र पहने हुए के सदृश है। एक लड़का तावीज़ [amulet] पहनता है। परन्तु अपनी सफलताओं को तो उस तावीज़ के मंत्रों से समझता है और असफलताओं को अपने प्रयत्नों की न्यूनता से मानता है। इसी प्रकार ऐ पुण्यात्माओं! असली कारण तुम्हारी विभूति, तुम्हारी अभिमान युक्त सभ्यता का कुछ और है। यह ईसाई मत [Christianity], या जिसे मैं गिर्जापन [Churchianity] कहता हूं, नहीं है। हमें इस बात की जांच ऐतिहासिक रूप से करनी चाहिये। हम इतिहास पढ़ते हैं और यह पाते हैं कि इस नाम मात्र ईसाईपन[Christianity] या गिर्जापन (Churchianty) के यूरोप में प्रचलित होने से पूर्व ऐसे राष्ट्र भी वहां मौजूद थे जो अधिक नहीं तो कम से कम उतने ही दर्जे तक समृद्ध और सभ्य ज़रूर थे, कि जितना आज कल का यूरोप और अमेरिका। मिसर [Egypt] की अपनी सभ्यता थी, और चीन की अपनी, बल्कि कुछ अंशों में तो यूरोप की कला वा शिल्प-विद्या प्राचीन मिसर और चीन की शिल्प विद्या के बराबर नहीं पहुंच सकी, भारत वर्ष का तो कहना ही क्या है, बल्कि फारस [Persia], यूनान [Greece] और रूम [Rome] भी तब अपनी २ सभ्यता रखते थे। ये सब देश और राष्ट्र सभ्य थे, और मूर्तिपूजक [heathens] भी थे। यदि सभ्यता और भौतिक वैभव [material prosperity] नित्य ईसाई मत [धर्म] के साथ २ रही होती, तो कृपया मुझे बताइये कि जब ईसाई मत उत्पन्न ही नहीं हुआ था, तो भी ये देश सभ्य और विभूतिवान थे, ऐसा क्यों? फिर, हम देखते हैं कि जो रूम [Rome] एक समय संसार भर में सब से श्रेष्ठ वा सर्वोत्तम देश था, और जो सर्वोपरि विभूति वाला (वैभव संम्पन्न) राष्ट्र था, उस रोम का अधःपतन हो गया।

रोम साम्राज्य का अधःपतन किस से हुआ ? यह ईसाई मत का आगमन और प्रचार था। इस विषय पर लेखक गिब्बन [Gibbon] को पढ़िये, इस विषय पर किसी माननीय (प्रमाण भूत) ऐतिहासिक ग्रन्थ को पढ़िये। ईसाई मत के प्रचार से पूर्व यूनान देश बहुत वैभव-सम्पन्न और सुखी था। आज कल के ईसाई ग्रीक उन उत्तम, पुराने काल के मूर्ति-पूजक यूनानियों की अपेक्षा से क्या है ? फिर हम कहते हैं कि "आओ और इतिहास पढ़ो"। इन सब तथ्यों और वृत्तान्तों के होते हुए भी किसी को अधिकार नहीं है कि वह अमेरिका तथा यूरोप की विभूति का कारण ईसाई पन या गिर्जा पन के माथे मढ़े। क्योंकि यूरोप में ईसाई मत फैलने के बाद एक हज़ार १००० वर्ष तक गहरा अंधकार बना रहा, अर्थात् योरुप घोर अज्ञान भरे युगों के गहरे अन्धकार तले एक हज़ार वर्ष तक रहा, ऐसे अकथनीय अन्धकार और इतने घोर अन्धकार व अन्ध विश्वास और अज्ञान के युगों में था कि जो शायद ही संसार में कभी छाया हो। यूरोप में ईसाई मत के प्रचार का यह परिणाम था।

कुछ लोगों का कहना है कि, "देखो, ईसाई मत ने क्या क्या नहीं किया; ईसाई मत संसार में सभ्यता का सब से बड़ा अवयव (factor, जुज़्व) है"। यह सभ्यता का अवयव (अंग) है कि जिस से काफरों को सज़ा देने की कचहरी, जादूगरनियों को जलाना, और वैज्ञानिक विचारवानों को पीड़ा देना, इत्यादि रीतियों को जारी किया। जहां कहीं विज्ञान ने उन्नति करनी चाही, वहां ही ईसाई मत उस का गला घूंट कर उसे मार डालने को तैयार हुआ। बरनो (Burno) जला कर मार डाला गया, क्योंकि उस के विचार वैज्ञानिक थे। तुम जानते हो कि ईसाई धर्म ने बेन

जोह्नसन और कारलायल (Ben Johnson and Carlyle) के साथ कैसा २ स्लूक किया। अमेरिका और यूरोप को विभूति दिलाने में किस २ ने भाग लिया, उन असली कारणों पर आज आओ हम विचार करें।

पुण्यात्माओं! यह धर्म-गद्दियों से प्रचार की हुई नरकाग्नि नहीं है कि जिस ने तुम्हें उन्नत किया है। यह बल्कि वह अग्नि है कि जो भाप के इञ्जन (Steam engines), बिजली (electricity), यन्त्रालय (printing presses) से आ रही है, यह जहाज़ और रेल की रीतियां हैं कि जिन के ऋणी तुम्हारी विभूती और भौतिक उन्नति है। इंगलैंड का डाक्टर जोह्नसन कहता है "यदि एक लड़का तुम से कहे कि उस ने इस खिड़की से झांका है जब कि झांका उस ने दूसरी खिड़की से हो, तो उस को ताड़न करो"। इसी तरह मैं तुम से कहता हूँ कि जब तुम एक बस्तु को किसी फल का कारण बताते हो जब कि कारण उस का वास्तव में दूसरी बस्तु हो, तब तुम किस (दण्ड) के अधिकारी हो?। इसी प्रकार तुम्हारी भौतिक (सांसारिक) उन्नति का असली कारण वही अवयव (जुज़्व, factors) हैं जो मैं ने ऊपर वर्णन किये हैं, अर्थात् ये वैज्ञानिक दर्याफ्तों (discoveries) और वैज्ञानिक ईजादों, इन दर्याफ्तों वा ईजादों में से एक को भी गिरजे के किसी रैवरण्ड [Reverend] डाक्टर, या मिनिस्टर ने नहीं किया है। क्या जेम्स वट [James watt], जार्ज स्टीफनसन [George Stephenson], बेञ्जेमिन फ्रैंक्लिन [Benjamin Franklin], थौमस ऐडिसन (Thomas Edison) या उन मनुष्यों में से कोई एक रेवरण्ड डाक्टर या पादड़ी या गिरजा का मिनिस्टर था? यदि इन मनुष्यों में से एक भी

बाइबल का प्रचारक होता, तो हम कह सकते थे कि तुम्हारी समस्त भौतिक उन्नति, तुम्हारी सारी सांसारिक विभूति का कारण बाइबल (इञ्जील) है। परन्तु हम देखते हैं कि यदि कोई आविष्कार (discovery) किसी आचार्य (Minister) से हुआ था तो वह गनपौडर [Gunpowder] ही का आविष्कार था।

तुम देखते हो कि तुम्हारी विभूति का कारण ईसाई मत या ईसाईयों के नियम वा आदेश नहीं है। यह कारण नहीं है। जैसे अमेरिका और यूरोप की भौतिक विभूति का कारण अमेरिका और यूरोप का मुबारक धर्म नहीं है, वैसे ही भारत वर्ष का शारीरिक वा भौतिक अधःपतन हिन्दु धर्म नहीं है। मैं यह मानता हूँ कि तुम्हारी या किसी और राष्ट्र की विभूति का असली कारण सच्ची अध्यात्मता है, और सच्ची अध्यात्मता [रूहानियत] को मैं सदा नाम रूपों, नियमों वा आदेशों, मतों, बस्त्रों, या जिस वेष में वह प्रकट हुई हो, उस से पृथक मानता हूँ। इसी से मैं कहता हूँ कि अमेरिका के वैभव का असली कारण सच्ची और वास्तविक अध्यात्मता है, जिस [अध्यात्मता] की उत्पत्ति और प्रचार, धर्म-गद्दियों से विरुद्ध) उपदेश और उन उपदेशों से वृद्धि को पाये रीति रवाज, इन सब के होते हुए भी, होते जारहे हैं। यह समस्त विधि निषेध ["Thou shalts," "and Thou shalt nots"] ने तुम्हारी उन्नति अर्थात् तुम्हारी आध्यात्मिक उन्नति की सहायता नहीं की वलिक बाधा डाली है। कैंट (Kant) इन्हें नियत विधि (Categorical imperatives) कहता है, अर्थात् आज्ञार्थ वर्णन जो मध्यम पुरुष की दशा में होता है। ऐसे समस्त कथन वा निर्देश तुम्हारी स्वतंत्रता को परिच्छिन्न करते हैं, वे तुम्हारी स्वतंत्रता हर लेते हैं।

कहां से यह सच्ची अध्यात्मता उत्पन्न हुई? संसार के इतिहास में कहां से यह सच्ची अध्यात्मता उत्पन्न हो आई? यह बात है जो मैं ने तुम्हें बतलानी है। सच्ची अध्यात्मता वही है जिस को हम वेदान्त कहते हैं। सारे मत (धर्म) इस संसार में एक व्यक्ति विशेष (personality) पर निर्धारित हैं। ईसाई मत ईसा के नाम पर अवलम्बित है। कोनफयोशियनिज़म (Confucianism) कनफियोशियस (Confucius) के नाम पर, बौध धर्म (Buddhism) बुद्ध के नाम पर, जुरास्टरीयनिजम (Zoroastrianism) जुरास्टर (*Z*oroaster) के नाम पर और मुसलमानी मत (Mohammedanism) मुहम्मद (Mohammed) के नाम पर अवलम्बित है। शब्द वेदान्त का अर्थ है अन्तिम ज्ञान, आत्मा का ज्ञान, और वह मनुष्य से यह चाहता है कि मनुष्य इसे उसी वृत्ति वा भाव से प्राप्त करे जिस से वह रसायन शास्त्र के ग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त करता है। रसायन शास्त्र के ग्रन्थ को तुम लेवोयज़ियर बोयल, रेनौल्डस, डेवी, (Lavoisier, Boyle, Reynolds, Davy), प्रभृति रसायन वेत्ताओं के प्रमाणों को लेकर नहीं पढ़ते। तुम रसायन शास्त्र का ग्रन्थ हाथ में लेते हो और उस में वर्णित प्रत्येक वस्तु का स्वयं विश्लेषण करते हो। मैं स्वतः अपने अनभवों के प्रमाण पर, न कि दूसरों के प्रमाण पर, यह विश्वास (निश्चय) करता हूं कि पानी हाइड्रोजन और औक्सीजन (Hydrogen and Oxygen) से मिला हुआ है। पानी का विद्युद्विकार करना (electrolysing) मुझे यह दर्शा देता है। इसी तरह जो मत वा धर्म किसी प्रमाण पर अवलम्बित है, वह मत या धर्म ही [ठीक] नहीं है। वही केवल सत्य है जो तुम्हारे अपने प्रमाण पर निर्धारित है। इस

विचार से मैं तुम से अध्ययन करने, पकाने (मनन करने) और अपने में धसाने (निदिध्यासन करने) वाले विषय पर ग्रन्थों के ग्रन्थ पढ़ने की सफारिश करूंगा। यह भाव (Spirit) है जिस द्वारा मैं चाहता हूं कि तुम शब्द वेदान्त के निकट प्राप्त हो जाओ। मेरा यह मतलब नहीं कि तुम अपने विश्वास को वेदान्त के साथ जोड़ दो। मैं किसी को अन्यधर्मग्राही बनाना नहीं चाहता हूं। परन्तु इस शब्द के अर्थ स्पष्ट करके मैं यह कहूंगा कि यह वेदान्त वा सच्ची अध्यात्मता संसार के पर्वतों अर्थात् विशाल वा प्रतापी हिमालय से बहती है। जैसे बड़ी २ विशाल नदियां और सुन्दर दरया उन शिखरों वा ऊँचाइयों से बहते हैं, वैसे ही सच्ची अध्यात्मता भारतवर्ष से बही है। तुम्हारे यूरोपीय पूर्वदेशी भाषा वेत्ता (European Orientalises) कहते हैं कि इन विषयों पर पुस्तकें ईसामसीह से लगभग चार हज़ार (४०००) वर्ष पहिले लिखी गई थीं। ये लोग इन पुस्तकों के मूल ढूँढने के यत्न में इस मिथ्या विश्वास के भारी बोझ के तले काम करते रहे हैं कि "संसार ईसामसीह से केवल चार हज़ार (४०००) वर्ष पहिले रचा गया था"। परन्तु मैं, वेदों के विद्यार्थी की अवस्था में, तुम्हें इस बात के आन्तरिक प्रमाण दे सकता हूं कि इन महाशयों के ये कथन गलत हैं। एक विश्वविद्यालय में मैं उच्च गणित-विद्या (higher mathematics) का प्रधानाध्यापक (professor) रहा हूं। मैं गति-विद्या (Dynamics), बीज-जलस्थिति-विद्या (analytical hydrootatics), ज्योतिष शास्त्र (astronomy), त्रिकोणमिति (Trigonometry) पर व्याख्यान देता रहा हूं, और वेदाध्ययन द्वारा उन दिनों आकाश में तारों और नक्षत्रों के स्थानों के हवाले (references) पाता रहा हूं। उन दिनों में ओरायन

और अन्य नक्षत्रों के स्थानों का जो निशान था, वह वेदों में दिया हुआ है, और फिर गाणतिक गणनाओं (Mathematical Calculations) से वैज्ञानिक और गाणतिक रीति से मैं इस बात का आन्तरिक प्रमाण देता हूं कि ये वेद, कम से कम उन में से कुछ वेद, ईसामसीह से आठ हज़ार वर्ष पहिले के लिखे हुए हैं। क्या हम उस प्रमाण को मानेंगे कि जो विलायती टाट (Canvas) के टुकड़े से दर्शाया गया [अर्थात् जो तुच्छ रीति से जाँच द्वारा दिया हुआ] है, या उस प्रमाण को मानेंगे कि जो गाणतिक सिद्धान्त और तारागण रूपी अक्षरों द्वारा साक्षात् ईश्वर से सीधा दिया हुआ है ? यह एक बड़ा विस्तृत विषय है, परन्तु मैं इस अल्प समय में तुम्हारे समक्ष केवल मुख्य २ उदाहरण रख सकता हूं कि जो इस समस्त कल्पना में कुछ विस्तृत सीमा चिह्न (land marks) हैं।

क्या आप में से किसी ने प्राचीन ग्रीक लोगों द्वारा लिखित भारत वर्ष का इतिहास पढ़ा है ? ईसामसीह से लगभग चार सौ (४००) वर्ष पहिले, ग्रीक लोग भारत वर्ष में आने लगे थे। इतिहास बतलाता है कि ये ग्रीक लोग अपनी यात्रा का वृतान्त छोड़ गये हैं। मैं ने उन में से कुछ एक को पढ़ा है। उन वृतान्तों में आप पाओगे कि उन दिनों भारत वर्ष के लोग आदर्शनीय पुरुष कहलाते थे। ग्रीक लोगों का कहना है कि हिन्दु कभी नहीं झूठ बोलते थे। स्त्रियां मनुष्यों के साथ खुल्लम खुला (अर्थात् विना परदा इत्यादि के) मिला जुला करती थीं। वे बराबरी के दर्जे से उन के साथ रहती थीं। और उन का कहना है कि जंगलों और पर्वतों में उन दिनों सारे देश भर में बड़े बड़े अद्भुत विश्वविद्यालय मौजूद थे। वे उज्ज्वल शब्दों में भारत वर्ष की भौतिक सम्पत्तिका वर्णन करते हैं। बेइमानी (अविश्वास)

और अशुद्धता जिसे कहते हैं, उस का यहां नितान्त अभाव था। लोगों के दर्शन-शास्त्रके विषयमें वे कुछ वर्णन करते हैं। ग्रीक लोग उस से मोहित हो गये थे। आज कल भी हम प्राचीन भारत के बड़े २ ग्रन्थों में से कुछ ऐसी पुस्तकें पाते हैं कि जो स्त्रियों से लिखी गईं। भारत वर्ष की एक सब से महान धर्मपरिषिद में, जहां संसार भर के सब से बड़े दर्शन-शास्त्रज्ञ (श्री शंकराचार्य जी) ने भाषण दिया था, एक भारतीय महिला सभापति हुई थी। कुछ सब से बड़े महत्व पूर्ण, प्रसिद्ध और अत्यन्त अद्भुत मंत्र भारत वर्ष की स्त्रियों के पवित्र हृदयों से बहे थे। मैं वाल्ट ह्विटमेन (Walt whitman) के इस कथन से सहमत हूं कि "सच्चाई पहिले स्त्रियों के अन्दर आती है"।

भारत वर्ष की समस्त संस्थाओं का अधःपतन किस से हुआ? भारत में मूर्तिपूजा कैसे आई? भारत वर्ष में मूर्तिपूजा इसी देश की उपज (स्वदेशोद्भव) नहीं है। आज ईसाई लोग तुम्हें कहते हैं कि (भारतके लोग मूर्तिपूजक हैं। परन्तु भारत वर्ष के बहुत विस्तीर्ण वैदिक ग्रन्थ, कविता, व्याकरण, गणित, शिल्पविद्या और गानविद्या के लेखों में हम मूर्तिपूजा का ज़रा सा भी हवाला वा उदाहरण नहीं पाते हैं। तब यह मूर्ति पूजा कहां से आई? भारत वर्ष के धर्म का यह कोई भी भाग वा अंग नहीं है। भारत वर्ष में यह मूर्तिपूजा ईसाई लोगों द्वारा आई। लोगों ने इतिहास के उस पृष्ठ को अभी तक पढ़ा नहीं है। परन्तु मेरी यह तफतीश (अन्वेषणा) छपे हुये लेख के रूप में प्रकाशित होगी। मैं इस को वाह्याभ्यन्तर प्रमाणों से सिद्ध करता हूं कि ईसामसीह के बाद चौथी और पाँचवी शताब्दी में कुछ रोमन कैथलक ईसाई भारत वर्ष में

गये, और ये ईसाई आज कल भी भारत वर्ष में मौजूद हैं। इन का नाम सेंट थौमिस ईसाई (St Thomas christians) है और भारत वर्ष के दक्षिणी भाग में रहते हैं। इन ईसाइयों ने मूर्ति पूजा यहां जारी की। फिर आन्तरिक प्रमाण से मैं सिद्ध करता हूं कि मूर्ति पूजा का जो सब से बड़ा हामी (मण्डन करने वाला) रामानुज, उन का गुरु सेंट थामस ईसाइयों में से एक था। सब से पहिली मूर्ति जिसके सामने इन लोगों ने प्रणाम किया उसे मैं जानता हूं, और उस मूर्ति में हम देखते हैं कि मुखाकृति पूर्वी अर्थात् भारत वर्षीय नहीं है। इस से, हे मेरे प्रियात्माओं! स्पष्ट होता है कि मूर्ति पूजा का मूल वा आरम्भ (भारतवर्ष में) उससे है जिसे तुम ईसाई मत कहते हो*। तुम (ईसाई) लोग इसे वहां ले गये। और आज पादरी लोग भारतवर्ष में मूर्ति पूजा का खण्डन करने आते हैं। एक ओर तो इस (मूर्ति पूजा) को वे रद्द करते हैं और दूसरी ओर वे उन मूर्तियों को बना कर बेचते और धनोपार्जन करते हैं। शायद यही तरीका है जिस से तुम उन लोगों को अपने मत में लाना चाहते हो। क्या ये मूर्तियां जिन को तुम बना कर उन लोगों के पास बेचते हो, इञ्जील की शिक्षा (gospel) से अधिक प्रभाव शाली हैं? यह तुम्हारे को अब स्वयं निर्णय करना है।

फिर, बहुत से लोग उस देश (भारत) की स्त्रियों की दास्यवृत्ति के संबन्ध में, उस देश की परदा-प्रथा के विषय में, अनेक किम्वदन्तियां कहते हैं। उस के मूल के संबन्ध में भी

---

*जैसा स्वामी राम ने अपने व्याख्यान में बोला वैसा यहां दे दिया गया है, पर इस से न किसी पर कोई आक्षेप और न ऐसा भाव समझा जाय कि राम के भक्त इत्यादि भी यही जरूर मानते होंगे क्योंकि यह ऐतिहासिक जाँच पड़ताल है, जो इतिहास के वेत्ता हैं वे ही इस पर अपनी मति दे सकते हैं, भक्त जन नहीं। (मंत्री)

एक दो शब्द कहने आवश्यक है। मुसलमान, जिन्हों ने एक समय भारत पर शासन किया था, बहुत दुराचारी थे। जब कभी वे अविवाहित हिन्दु कन्या को देखते थे, तो उस की इज़्ज़त ले लेना चाहते थे। इस प्रकार स्त्रियों पर पाशविक अत्याचार किये जाते थे। हिन्दु इस परिणाम से बचना चाहते थे और यह प्रथा प्रचलित कर दी गई कि कन्या का तरुण अवस्था (यौवन काल) से पूर्व ही विवाह किया जाय, और इस से अतिरिक्त और किसी भी अवस्था में किसी स्त्री को विवाह करने की आज्ञा न दी जाय। उसी कन्या काल में विवाह होना चाहिये। फिर स्त्रियां बाज़ार में मुँह खोले (विना परदे के) नहीं घूम फिर सकती थी, क्योंकि मुसलमान विजेता यदि उनका मुख देख लेते तो उनकी इज़्ज़त ले डालते थे। इस प्रकार परदा ओढ़ने की प्रथा चल गई, जो प्रथा समस्त मुसलमान शासित देशों में प्रचलित थी। हिन्दु-शासन काल में यह प्रथा कभी भी मौजूद न थी।

ऐ मेरे प्रियात्माओं! हिन्दु भी उसी अस्थि, मांस और रक्त के बने हैं जिनके तुम बने हुए हो। उनकी भाषा तुम्हारी भाषा की जड़ है। यदि मेरा रंग काला है, तो उस का केवल अर्थ यही है कि मेरा चर्म (चमड़ा) पकाया गया (tanned) है; परन्तु मेरे शरीर के अंग जो ढके हुए हैं उतने ही लाल हैं जितने तुम्हारे हैं। उन का मुख पूर्वीय है, परन्तु वे तुम्हारे साथ एक ही हैं, तुम्हारा ही मांस और रक्त हैं।

यह कि यूरोपीय संसार अपनी अध्यात्मता और सभ्यता के लिये यूनान (Greece) का ऋणी है। कोई भी बुद्धिमान मनुष्य इसको अस्वीकार करने का प्रयत्न न करेगा। परन्तु प्रियवरो! यूनानी लोगों के सम्बन्ध में क्या? यूनानी लोगों के दर्शन शास्त्र के सम्बन्ध में क्या तत्त्व है? क्या तुम

ने कभी प्लेटो, सुक्रात, और पाइथेगोरस (Plato, Socrates, and Pythagoras) के ग्रन्थों को भारतवर्ष के दर्शन शास्त्र के साथ साथ मिला कर पढ़ा ? यदि तुमने पढ़ा है, तब तुम कभी अस्वीकार नहीं कर सकते कि आत्मा की नित्यता (अमरता, Immortality of the Soul) और पुनर्जन्म (metempsychosis) की कल्पनायें ये सब हिन्दु दर्शन-शास्त्र की सन्तान हैं, कहने में केवल इतना अन्तर अवश्य है कि यूनानियों ने समग्र सत्यता हिन्दुओं से नहीं प्राप्त की। हम आज भी देखते हैं कि अरिस्टोटल का तर्क शास्त्र (logic of Aristotle) हिन्दुओं के तर्क शास्त्र की अपेक्षा से बहुत दोष युक्त है। यूनानियों के न्याय-शास्त्र के विभाग की विधि का हिन्दुओं के न्याय-शास्त्र के विभाग की विधि से मुकाबला किया जाय तो तुम देखोगे कि अरिस्टोटल का दर्शन-शास्त्र दोष पूर्ण है। हिन्दुओं के ग्रन्थों में आगमन शास्त्र और निगमशास्त्र (Inductive and Deductive Logic) दोनों लिखे गये हैं, जब कि यूनानियों और यूरोपी लोगों ने केवल निगमनशास्त्र की विधियों को ही निकाला वा प्रकाशित किया है। विलियम जोन्स (William Jones) इस बात को सिद्ध करता है। उस का कहना है कि "जब हम भारत के हिन्दुओं के बृहत्, स्पष्ट, व्यापक वा बहुविस्तीर्ण (comprehensive) दर्शनशास्त्रों के क्रम से इन यूनानियों के ग्रन्थों को मिलाते हैं, तब हम को यह विवश होकर निश्चय करना पड़ता है कि यूनानी लोगों ने अपना ज्ञान भारतीय दर्शन-शास्त्र के निर्झर (fountain head) से लिया हुआ है।"

तुम्हारे ओल्ड टेस्टेमेंट (पुरानी अञ्जील Old Testament) से न्यू टेस्टेमेंट (नयी इञ्जील New Testament)

का क्या भेद है ? यह ऐसे वचन हैं :—"मैं और मेरा पिता एक हैं।" " मेरा जीना, फिरना और अस्तित्व सब उस (ईश्वर) में हैं।" "आदि में शब्द था, और शब्द ईश्वरके साथ था, और शब्द ईश्वर था।" "जिस किसी ने पुत्र को देख लिया है, उसी ने पिता को देख लिया है।" "स्वर्ग का राज्य तुम्हारे भीतर है।" "अपने पड़ोसी के साथ अपने सरीखा प्रेम करो।" फिर जब ईसामसीह कहता है कि :— "तुम मेरा मांस खाओ और रक्त पी लो, और जब तक मेरा मांस नहीं खाते और रक्त नहीं पीते, तब तक तुम बच नहीं सकते," तो देखो, लोगोंने इस बचन की कैसे मिथ्या व्याख्या की। उसके मांस और रक्त को खाने व पीने और निःसम्बन्ध होने के स्थान पर वे वृथा उस की पूजा करते हैं। दर्शन-शास्त्र, तर्क-शास्त्र, और युक्ति के नाम पर जो दौड़ता अर्थात् आगे बढ़ता है, वह सब पढ़ सकता है, ऐसा क्यों ? वेदों पर पुस्तकें पढ़ो और तुम को पता लगेगा कि ये (उक्त) बातें वेदों में हैं, जिनका उपदेश वा प्रचार हज़ारों वर्ष पूर्व भारत वर्ष में हुआ था। ईसामसीह के मृतोत्थान और धर्मोपदेश के विषय में पूछो, तो वे भी हिन्दु और वेदान्ती विचार हैं। यहां मैं तुम्हें एक पुस्तक का हवाला देता हूं जिस को एक रूसी निकोलस नोटोविच (Nicholas Notovitch) ने फ्रांसीसी भाषा में लिखा है और अंग्रेज़ी भाषा में उस का अनुवाद हो गया है। पुस्तक का नाम "ईसामसीह का अविज्ञात जीवन" (The unknown life of jesus) है।

यह पुस्तक किसी हस्त लिखित पुस्तक के आधार पर लिखी गई है, जो कि तिब्बत के मठ में पाई गई थी। ग्रन्थकार ने उस स्थान को देखा है, और जब तुम पुस्तक पढ़ चुकोगे, तब तुम इन सब बातों की सत्यता को अवश्य अनुभव कर

सकोगे। इस पुस्तक में तुम्हें ईसा मसीह के जीवन के उस भाग का वृतान्त मिलेगा जिस का ज़िक्र अञ्जील में कुछ भी नहीं हुआ है, और यह वृत्तान्त उस के जीवन के आठवें वर्ष से तीसवें वर्ष तक का है, जो समय उस ने भारत वर्ष में व्यतीत किया था। ये बातें ऐसी हों वा न हों, परन्तु अप-रोक्ष रूप से (indirectly) ज्ञान योरूशलम में अवश्य आ सकता था। तब भी तथ्य यह बना रहा है कि ईसा मसीह के कार्य और धर्मोपदेश वेदान्त की धीमी प्रतिध्वनि हैं, जो वेदान्त भारत वर्ष का धर्म-शास्त्र है । अपनी अञ्जील में तुम यह बात पाते हो "Love your neighbour as your self" "अपने पड़ोसी के साथ प्रेम अपने सरीखा करो" । परन्तु इस के लिये कोई युक्ति वा उपपत्ति (rationale) वहां नहीं दी गई। जैसा पुण्यवान् हरबर्ट स्पेन्सर कहता है कि जब हम किसी बच्चे को केवल इतना कहते वा आज्ञा देते हैं कि "तुम ऐसा करो" तो हम सचेत (विचार-युक्त) प्राणी की उच्च प्रकृति को दास बनाते हैं, क्योंकि तर्क-शास्त्र-वेताओं ने मनुष्य को एक सचेत (वा सविवेक) पशु कहा है। हम उसी समय बालक के मन को दासत्व में जकड़ लेते (वा दास बना लेते) हैं, जब उस को किसी प्रमाण के आधार पर काम करने की आज्ञा देते हैं, अर्थात् जब उस से आज्ञा के ज़ोर से काम कराते हैं। एक बालक उस काम को ज़रूर करेगा जिस को तुम चाहोगे कि वह अपनी इच्छा वा आज्ञा या मर्ज़ी के अनुसार करे। पर जिस समय तुम कहते हो:-'यह करो,' या 'यह मत करो', तो तुम मन को दास बना डालते हो। एक बालक से पूछा गया कि "तुम्हारा नाम क्या है" ? उस ने उत्तर दिया कि मुझे पता नहीं, पर मेरी माता मुझ से कहा करती है कि 'मत करो' (don't) । जब'तुम

कहते हो (वा आज्ञा देते हो) कि "तुम अपने पड़ोसी के साथ अपने सरीखा प्रेम करो", तो तुम्हें इस के साथ मुझे यह भी कहना चाहिये कि क्यों और कैसे मुझे यह करना चाहिये। मैं अपने पड़ोसी को अपने सरीखा कैसे प्यार कर सकता हूँ जब कि ईसाई मत के पूज्य लोग (मिनिस्टर और डाक्टर आफ डिविनटी, Ministers and Doctors of Divinity) अपने अन्तः हृदय से हिन्दुओं को घृणा करते हैं। ऐसी दशा में हमारे लिये कैसे सम्भव है कि हम अपने पड़ोसियों को अपने सरीखा प्यार करें ? ये स्पष्टार्थ वा नियत आज्ञायें इस संसार में उपदेशित हुई हैं, पर संसार वैसा ही आज है जैसा कि पहिले था। कान्फयूसिअस, ज़ोरोआस्टर और श्री कृष्ण ने उपदेश दिये और संसार तब भी अपने पापों से युक्त रहता है। क्या संसार पहिले से कुछ अधिक खुश वा सुखी है ? किसी ने कहा है कि दुन्या कुत्ते की पूँछ के समान है। कुत्ते की पूँछ को एक बांस की पोंगली में बारह वर्ष तक बन्द रक्खो और जब तुम उस पर से बांस हटा लोगे, पूँछ पहिले के समान ही ऐंठेगी। यही उदाहरण संसार के लिये भी ठीक उतरता है। इसे सुधारने का यत्न करो, परन्तु जब तुम इसे पुनः छोड़ दोगे, तो यह अपने पुराने ढर्रे पर आजावेगा। इस से मुझे एक कहानी याद आती है। एक मनुष्य एक समय एक झूठे स्वामी (Pseudo-Swami) के पास यह पूछने को गया कि अमुक लड़की का प्रेम किस रीति से जीता जाय। इस झूठे वा बनावटी स्वामी ने कहा "मैं तुम्हें एक मंत्र, एक विधि बतलाऊंगा जिसे तुम्हें दोहराना होगा। लगातार इसे तुम जपो और तुम इस से लड़की (अपनी प्रिया) का प्रेम जीत लोगे, पर (इस बात का ख्याल रखना होगा कि) जब तक तुम इस

मंत्र को जपो, तब तक बन्दर का ख्याल तुम्हारे मन में न आवे। यह मनुष्य आप ही आप में मंत्र का जाप करने लगा, परन्तु हाय, दुर्भाग्य वश ऐसा हुआ कि बन्दर सारा काल उस के साथ ही रहा। तब वह मनुष्य उस बनावटी स्वामी के पास वापिस आया और बोलाः—"कि मुझे अपने जीवन पर्यन्त बन्दर का ख्याल कभी भी न आया होता यदि आप बन्दर के ख्याल को न करने की आज्ञा न देते"। इसी प्रकार हे पुण्यात्माओं! यह (उक्त प्रकार का विधि निषेध, भी है। यह वही विधि निषेध 'do's,' 'don'ts,' 'thou shalts' and tho ushalt nots'= तुम यह करो, यह मत करो'; 'तुझे यह करना होगा, यह तुझे न करना होगा') हैं जो ईश्वर आज्ञायें नहीं हैं। इस लिये तुम जानते हो कि मनुष्यों की अपेक्षा गाय, बैल, और सिंह स्वच्छ क्यों हैं? उन में विषय-वासना वा इन्द्रियों को अपने वश में करने के लिये कोई मनाई के नियम वा निषेधक नियम नहीं हैं। इस आज्ञा में —"तुझे अपने पड़ोसी के साथ अपने सरीखा प्रेम करना होगा"— हम फिर देखते हैं कि निशाना चूक गया है। मनुष्य दूसरों के प्रमाण पर (वा किसी अन्य की इच्छानुसार) कोई बात स्वीकार वा ग्रहण न करेगा। मुझे अपने पड़ोसी के साथ अपने सरीखा प्रेम क्यों करना होगा? वेदान्त दर्शन में नौ भिन्न २ प्रकार से यह सच्चाई हमें बड़ी ही उत्कृष्ट, अद्भुत, और प्रशंसनीय रीति से समझाई गई है। वेदान्त के प्राचीन ग्रन्थों के पढ़ने वालों को बतलाया गया है कि तुम्हारा आत्मा सब का आत्मा है, तुम्हारा पड़ोसी तुम्हारा आत्मा है। जब मैं जान लेता हूं कि मेरा पड़ोसी मेरा आत्मा है, तब स्वभाव से ही मैं उसको अपने आत्मा के तुल्य प्यार करता हूं। यहां यह तत्त्व इञ्जील की अपेक्षा बहुत स्पष्ट रूप से रखा

गया है। हमें अन्तःकरण-शास्त्र (Psychology) के नियम जानना चाहिये, क्योंकि मानव मन की ऐसी ही प्रकृति है। किसी बालक को कहो कि 'आग न छू', तो वह उसे अवश्य छूदेगा। परन्तु यदि बालक को ऐसा कहो कि अगर तू आग छूवेगा तो यह तुझे जला देगी, तब वह अपनी ही समझ व इच्छा पर उस आग को कभी नहीं छूवेगा। परन्तु कभी भी उसे एसा मत कहो कि "आग को तू मत छू"। जब तुम केवल इतना ही मुझे कहते हो कि "अपने पड़ोसी के साथ अपने सरीखा प्रेम करो", तो मैं इसे नहीं करूंगा। परन्तु जब तुम मुझे ऐसा कहते हो कि मेरा पड़ोसी मेरा आत्मा है या वह मैं स्वयं हूं, तब उसके साथ अपने सरीखा प्रेम वा वर्ताव किये विना मैं नहीं रह सकता।

मैं ने तुमको यूरोपीय संसार में आत्मवादियों की बड़ी संस्था का मूल बताया है। अब मुझे थोड़ा और आगे बढ़ने दो।

ये महान उपदेश जो इञ्जील द्वारा प्राप्त हुए, घोर अविद्या काल (dark ages) में यूरोप में लुप्त हो गये थे, और संसार को एक नये उद्धार की ज़रूरत थी। कहां से यह नया उद्धार आया जिस ने अन्धकार के युग को हटा दिया, और तत्पश्चात् बीच के समय (Middle ages) को बहा ले गया? जहां तक स्वीकृत ईसाई मत से संबन्ध था, वहां तक तो अन्धकार काल ही था। यदि तुम ने इतिहास पढ़ा है तो इस बात में तुम मेरे से सहमत होगे कि घोर अज्ञान और मध्यम बुद्धि का काल यूरोप में नवीकरण (Renaissance) वा विद्या के पुनरुत्थान से बहा दिया गया था। यह पुनरुत्थान मूर्ति-पूजक यूनान और रोम (Greece and Rome) के ग्रन्थों के अवलोकन से हुआ था। यह मूर्ति-

पूजकों की विद्वता थी जिसने अन्धकार और बीच का मध्यम बुद्धि का समय (Dark and Middle Ages) दूर किया, और यह मूर्ति-पूजकों की विद्या अपनी उत्पत्ति भारत वर्ष से रखती है। वहां पुनः संसार को शुद्ध करने (पुण्यात्मा बनाने) के लिये नया उद्गार भारत वर्ष से आया। अब मैं संसार के आधुनिक काल के विचार की ओर आता हूं।

अब, ऐ प्रियात्माओं! अमेरिका का नूतन विचार क्या है? यह ईसाइयों का विज्ञान (Christian Science), यह ईश्वरी-ज्ञान (Theosophy) और यह अमेरिका का अध्यात्मवाद (Spiritulism) क्या है? चाहे हिन्दु उपदेशकों द्वारा कि जो सशरीर या बिना शरीर यहां आये, चाहे उन लेखों द्वारा जो शोपनहावर से गुप्त रीति से प्राप्त हुए, या अमेरिका के नूतन विचार के सीधे मार्गों द्वारा प्राप्त हुए, ये सब के सब (मत वा ज्ञान) भारतवर्ष से आये हैं। संसार के राजनैतिक इतिहास के नूतन विचार जिसे तुम असली जन-सत्ता वा प्रजातंत्र, वा प्रजाप्रभुत्व या सामाजिकोद्वेजन-वाद (radical democracy or socialism) कहते हो, उस को भी मैं तुम्हें सिद्ध करके बतला सकता हूं कि वह सब विशेष करके (या अपने विशेषण और लक्षणों से) वेदान्तिक है। मैं ने सामाजिकोद्वेजनवाद (Socialism) और वेदान्त पर एक लेख लिखा है और दूसरी पुस्तक 'राष्ट्रों का पातोत्पात' (वा उत्थान-पतन, rise and fall) लिखी है। इन पुस्तकों में मैं ने उन वचनों के प्रमाण और सबूत दिये हैं जिन्हें मैं अभी तुम से कह रहा हूं।

अमेरिका में नूतन विचार का पिता और पैगम्बर (सिद्ध पुरुष, prophet) इमर्सन हुआ है। उस ने सच्चाई व अध्यात्मता का प्रचार किया, परन्तु उस ने अध्यात्मता

(रूहानियत) का कोई स्वार्थ पूर्ण उपयोग नहीं किया। उस ने सत्य को सर्वप्रिय बना दिया। परन्तु इमर्सन का अध्यात्म-पिता अमेरिका में उस को उभाड़ने वाला वा उस में दम फूकने वाला (inspirer) हेनरी. डी थोरो (Henry D. Thoreau) था। इमर्सन की अपेक्षा वह अधिक मौलिक (original) था। दूसरा प्रेरक इमर्सन का कारलाइल (Carlyle) है। और कहां से इन मनुष्यों—कारलाइल, इमर्सन, थोरो और वाल्ट ह्विटमैन (Carlyle, Emerson, Thoreau, and walt Whitman) को प्रेरण (इल्हाम) प्राप्त हुई? इन की प्रेरणा (उद्गार) अनेक स्रोतों वा कारणों से आई। कान्ट और शापन हावर (Kant and Schopenhauer) जैसे मनुष्यों के लेख कहां से आये? और कोई कारण वा स्रोत सिवाय वेदान्तिक ग्रन्थों के प्रत्यक्ष अध्ययन के नहीं है। मैं यह सिद्ध कर सकता हूं कि नूतन उद्गार वा प्रवर्तन (impulse) जो कारलाइल और रस्किन द्वारा संसार को मिला है, वह कांट, शोपन हावर और फिक्टे (Kant, Schopenhauer and Fichte) के दर्शन-शास्त्रीय लेखों से उत्पन्न हुआ वा प्राप्त हुआ था। और मैं यह तुम को सिद्ध कर दूंगा कि इस देश का नूतन विचार भारतवर्ष से आया है, क्योंकि कांट, शोपन हावर, फिक्टे के और कुछ हद तक स्वीडन बर्ग के समस्त लेख प्रत्यक्ष हिन्दु दर्शन शास्त्र से प्रेरित हैं। शोपनहावर अपनी पुस्तक (The World is Will and Idea = सारा संसार संकल्पमात्र वा इच्छा मात्र है) में कहता है:—

"In the whole world there is no religion or philosophy so sublime and elevating as the vedanta (Upanishads). This Vedanta (Upanishads) has

been the solace of my life, and it will be the solace of my death."

"समस्त संसार में ऐसा कोई धर्म या दर्शन शास्त्र नहीं जो इतना उत्कृष्ट और उन्नत हो जैसा कि वेदान्त (उपनिषद्)। यह वेदान्त (उपनिषद्) मेरे जीवन की तसल्ली (धैर्य वा शान्ति = Solace) रहा है और यह मेरे मृत्यु की भी तसल्ली (आश्वासन) रहेगा।" इस वेदान्त दर्शन को क्या इससे बढ़कर और भी कोई उच्च स्तुति रूप भेंट दी जा सकती है ? उस के लेखों में भी वेदान्तिक दर्शन और प्रकरण ग्रन्थों के बहुत से हवाले हैं। फिर फ्रांस में दर्शन-शास्त्र के इतिहास-लेखक विक्टर कज़न (Victor Cousin) का कथन है:—

"There can be no denyig that the ancient Hindus possess the knowledge of the true God. Their philosophy, their thought is so subline, so elevating, so accurate and true, that any comparison with the writings of the Europeans appears like a Promethean fire, stolen from heaven as in the presence of the full glow of the noon-day Sun."

"इस में कभी इन्कार नहीं हो सकता कि प्राचीन हिन्दु वास्तव में परमेश्वर का ज्ञान रखते थे। उनका दर्शन-शास्त्र (तत्त्व ज्ञान), उन का ख्याल इतना उत्कृष्ट, इतना उच्च, इतना यथार्थ और सच्चा है कि युरोपीय लेखों से उसकी कोई तुलना करना ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे ठीक मध्यान्ह काल के सूर्य के पूर्णप्रकाश में स्वर्ग से प्रोमीथियन आग (Promethean fire) का चुराया जाना।" अन्य स्थान पर उस का कथन है:—

"When we read with attention the poetical and philosophical monuments of the East, above all,

those of India which are beginning to spread in Europe, we discover there many a truth and truths so profound, and which make such a contrast with the meanness of the result, at which the European genius has sometimes stopped and we are constrained to bend the knee before the philosophy of the East, and to see in this cradle of the human race the native land of the highest philosophy.''

जब हम ध्यान पूर्वक पूर्वीय, विशेष करके भारतवर्षयी कविता और दर्शन शास्त्र की पुस्तकें वा लेखों को पढ़ते हैं, कि जिनका विस्तार वा प्रचार अभी यूरोप में होने लगा है, तो, हमें उन में बहुत सी सच्चाइयाँ मिलती हैं, और ऐसी सच्चाइयां कि जो अति गहन हैं, और जो परिणाम की नीचता से ऐसा विरोध रखती हैं (अर्थात् जिन के परिणाम नितान्त ठीक २ उतरते हैं), जिस पर यूरोपीय बुद्धि कभी २ रुक गई है, और हम को पूर्व के दर्शनशास्त्र के सामने मजबूरन घुटने टेकना पड़ता है, और मानव जाति के इस भूले (पालने) में हमें सर्वोच्च दर्शन-शास्त्र की जन्म-भूमि देखना पड़ती है।" श्लेगल (Schlegel) का कहना है कि हिन्दु विचार के मुकाबले में यूरोपीय दर्शन-शास्त्र (तत्व ज्ञान) की सर्वोच्च डींग (higheest stretches, भारी अत्युक्ति) ऐसी प्रतीत होती है जैसे बड़े भारी प्रताप-वान् दैत्य (Titan) के सामने अत्यन्त लघुतनु बौना। भारतीय भाषा, साहित्य, और दर्शन-शास्त्र के सम्बंध में अपने ग्रन्थ में, वह लिखता है:—

"It cannot be denied that the early Indians

possessed a knowledge of the true God, all their writings are replete with sentiments and expressions, noble, clear and severely grand, as deeply conceived and reverentially expressed as in any human language in which men have spoken of their God."

"यह इन्कार (अस्वीकार) नहीं किया जा सकता कि प्राचीन काल के भारतवासी सत्य परमात्मा का ज्ञान रखते थे। उन के समस्त लेख (ग्रन्थ) ऐसे भावों (अभिप्रायों) और उदाहरणों से परिपूर्ण हैं कि जो अति श्रेष्ठ, शुद्ध, और अत्यन्त विशाल, इतने गहरे विचारे हुए और इतने आदर वा भक्ति पूर्वक स्पष्ट किये हुए हैं कि ऐसे किसी अन्य मानवी भाषा में, जिस में मनुष्यों ने अपने ईश्वर सम्बन्धी विचार को बोला है, नहीं हैं। और वेदान्त दर्शन के विषय में विशेष करके उसका कहना है कि:—

"The divine origin of man is continually inculcated to stimulate his efforts to return, to animate him in the struggle and incite him to consider a reunion and re-corporation with Divinity as the one primary object of every action and exertion."

"मनुष्य का दिव्यमूल (स्वरूप) उसे निरन्तर इस लिये समझाया जाता (या उसके चित्त में धारण कराया जाता) है कि इस से मनुष्य अपने स्वरूप (मूल) की ओर लौटने के लिये अपने परिश्रम को खूब उत्तेजित करे, इस जीवन-प्रयास (प्रयत्न) में अपने को सजीव वा प्रोत्साहित करे, और अपने को इस विचार में प्रवृत्त वा प्रेरित करे कि "प्रत्येक कर्म और व्यापार (उद्यम) का एक

मात्र मुख्य उद्देश अपने निज स्वरूप (आत्मा) से पुनः मिलाप और पुनः संघ है "। मैक्समूलर (max muller) कहता है कि:—

"If the judgment or the opinion of such a grand philosopher as Schopenhauer require endorsement, I, on the basis of my long life, devoted to the study of almost all religions, and philosophies, must humbly endorse it." He says :— "If philosophy or religion is meant to be a preparation for the after-life, a happy life and happy death, I know of no better preparation for it than the Vedanta." Again he says "I am neither ashamed, nor afraid to say that I share his (Schopenhaner's) enthusiasm for the Vedanta and feel indebted to it for much that has been helpful to me in my passage through life."

"यदि शोपनहावर जैसे महान् दर्शन-शास्त्रज्ञ की राय वा निर्णय पर किसी की स्वीकृति, राय वा सहीह (endorsement) लेने की आवश्यकता है, तो मैं अपने इतने दीर्घकाल पर्यन्त के प्रायः सब धर्म और दर्शन-शास्त्र के अध्ययन के आधार पर विनम्र भाव से इस पर अपनी स्वीकृति, राय वा सहीह देता हूं।" और आगे उसका कथन यह है कि :-"यदि दर्शन-शास्त्र (तत्त्व ज्ञान) या धर्म का अभिप्राय वा उद्देश्य पुर्नजीवन, एक सुखी जीवन और सुख पूर्वक मृत्यु के लिये तैयारी करना है, तो मैं इस के लिये वेदान्त से बढ़ कर और कोई अच्छी तैयारी नहीं समझता।" और पुनः वह (मैक्स-मूलर) ऐसे कहता है कि :—"मुझे ऐसा कहने में न कोई लज्जा (शर्म) है और न भय, कि वेदान्त के लिये जो शोपन हावर का उत्साह वा जोश है, उस में मैं भी भाग लेता हूं,

और जितना वह मेरी जीवन यात्रा में सहायक रहा है उस सब के लिये मैं उस का अपने को ऋणी मान करता हूं।" सर एडविन आर्नल्ड के ग्रन्थो (India Revisited, his Song Celestial, his Light of Asia, his Song of Songs) में इस विषय का वर्णन है, जिस का मैं तुम को हवाला दे रहा हूं। थोरो (Thoreau) अपने ग्रन्थ (Walden and letters) में बहुधा वेदान्तिक लेखों का हवाला देता है, और अपने भ्रमण (पर्यटन, Excursion) के वृत्तान्त में भी थोरो भारतीय लेखों का हवाला देता है। अमेरिका में समस्त नूतन विचार का मूल थोरो से निकला वा बहा है, जिस ने स्वयं स्वीकार किया हुआ है कि उस ने अपना सारा ज्ञान हिन्दुओं से प्राप्त किया है। इमर्सन (Emerson) लन्दन-यात्रा के पश्चात् जब अमेरिका लौटने वाला था, तब उस से रेल्वे स्टेशन पर कारलायल मिला। उपहार वा पारितोषकके रूपमें कारलायलने इमर्सन को एडविन जोन्स-प्रणीत भगवद्गीता के प्रथम अनुवादों में से एक अनुवाद दिया। यह पुस्तक कैन्टके समय के पूर्व ही, लैटिन, फ्रैञ्च, और जर्मन भाषा में अनुवादित हो चुकी थी। कैन्ट ने यूरोप के दार्शनिक विचार का पुनरुत्थान किया, और अपने देश, काल वस्तु के स्वतः सिद्ध उत्पत्ति (सहजात, A. priori) वाले सिद्धान्त के लिये वह भारतवर्ष का ऋणी है।

मिसिज़ एड्डी (Mrs. Eddy) के ग्रन्थ की पहिली आवृत्ति में भगवद्गीता के प्रमाण (quotations) हैं, परन्तु बाद की आवृत्तियों में वे निकाल दिये गये हैं। ईश्वर का शब्द यदि बिल्कुल ईश्वर वाक्य ही है, तो वह शुद्ध, स्पष्ट और कुशल होना चाहिये।

मेरे कहने का यह मतलब नहीं है कि लोग यहां शब्द

चोर वा ग्रन्थ चोर या नक़ल करने वाले हैं। मैं यह मानता हूं कि अमेरिका के लोगों के लिये इन सच्चाइयों का पुनः मालूम करलेना वैसा ही है जैसा कि इन का भारतवर्ष से पा लेना। इस सूर्य तले कुछ भी नया नहीं है।

असली और यथार्थ सामाजिकोद्वेजन-वाद (Socialism) आज कल हिमालय के स्वामियों में प्रत्यक्ष रूप से मौजूद है। इंग्लैंड के एडवर्ड कार्पेन्टर ने अपना साधारण स्वत्व-वाद (Socialism) हिन्दुओं से प्राप्त किया। सो तुम्हारा सारा नूतन विचार हिन्दुओं का पुरातन और अप्रचलित विचार है। यथार्थ केन्द्र, सम्पूर्ण सत्य, और समग्र नूतन विचार को प्राप्त होने के लिये, हे पुण्यात्माओं! तुम्हें अभी ज़रा और प्रतीक्षा करनी होगी और भारतवर्ष से और ज्ञान प्राप्त करना होगा। अभी तक बहुत से अद्भुत ग्रन्थों का तुम्हारी भाषा में अनुवाद नहीं किया गया है, जैसे कि योगवासिष्ठ जो अमेरिका के समस्त नूतन विचार का वर्णन करता है। यह ग्रन्थ साफ, बहुविस्तीर्ण (व्यापक), तर्कयुक्त और वस्तुतः सच्ची कविता में लिखा हुआ है। इसी रीतिसे हमारे गणित शास्त्र के ग्रन्थ लिखे हुए हैं। और इस प्रकार गणित शास्त्र विद्यार्थियों के लिये एक हव्वा बाटा (bug-bear) होने के स्थान पर, जैसा कि बहुत से विद्यार्थियों के साथ हो जाता है, आनन्द रूप बना दिया गया है।

इस संसार में तुम्हारा काम आनन्द पूर्वक समाप्त होना चाहिये। इस से मुझे एक उद्यान का स्मरण होता है कि जिस में निर्धन काम करने वाले कुल्ली लोग रास्ते में पत्थर फोड़ा करते हैं। उन के हृदय उदास वा पत्थर वत् भारी होते हैं और वे सम्पूर्ण समय परिश्रम ही किया करते हैं। उसी बाग की तृणभूमि पर जिस में ये कुल्ली काम कर रहे हैं

राजकुमार टैनिस खेल रहे हैं। उन का काम एक खेलमात्र अर्थात् आनन्द का है, क्योंकि अपने आनन्द में वे संभवतः कुल्लियों से भी अधिक पसीना बहा रहे हैं। इस दुन्या में तुम्हारी वृत्ति वा स्थिति टैनिस खेलने वाले राजकुमारों के समान होनी चाहिये। उन का काम एक खेल वा आनन्द है। यह नहीं कि तुमने काम और परिश्रम को त्यागना है, बल्कि यह कि तुम्हारा भाव अपने काम की ओर और काम में बदल जाना चाहिये। और इस प्रकार काम और आनन्द सदा दोनों तुम कर सकोगे। तुम दूसरे प्रकार के आनन्द से परिपूर्ण हो जाओगे, जो तुम्हारे आत्म स्वरूप में आश्रित हैं। जब तुम अपनी दिव्य प्रकृति के सुन्दर देवदारु और चिनार-वृक्षों के शिखर पर बैठते हो, तो इस सुन्दर आत्मिक विचार की दिव्य प्रकृति पर ईश्वरीय (दिव्य) राग और अद्भुत काम तुम्हारे आत्मा से बहने और बरसने लग जाता है। "That which is forced is never forcible." वह जो विवश हो कर किया जाता है, स्वयं शक्तिमान नहीं होता। जिस प्रकार सूर्य से प्रकाश निकलता है, जैसे गुलाब से सुगंधि निकलती है, जैसे सुन्दर बर्फानी शिखरों, पर्वत की नदियों और निर्झरों (चश्मों) से शीतलता निकलती है, ऐसे, हे प्रकाशों के प्रकाश! शान्ति, आनन्द, प्रेम और प्रकाश तुम से निकले। ओम्, शान्ति तुम्हारे साथ हो।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

श्री स्वामी रामतीर्थजी के संन्यासोपलक्ष में लिखित एक कविता

युवा संन्यासी ।

गुण-निधान मतिमान सुखी सब भांति एक लवपुर-वासी ।
युवा अवस्था बीच विप्रकुल-केतु हुआ है संन्यासी ॥
विविध रीति से उस विरक्त को सुहृद बन्धु समुझाय थके ।
गङ्गाजी के प्रवाह ज्यों पर उसे न वे सब रोक सके ॥ १ ॥

वृद्ध पिता-माता की आशा, बिन ब्याही कन्या का भार ।
शिक्षा-हीन सुतों की ममता, पतिव्रता नारी का प्यार ॥
सन्मित्रों की प्रीति और कालिज वालों का निर्मल प्रेम ।
त्याग, एक अनुराग किया उसने विराग में तज सब नेम ॥ २ ॥

"प्राणनाथ ! बालक सुत दुहिता"—यों कहती प्यारी छोड़ी ।
"हाय ! वत्स ! वृद्धा के धन !!" यों रोती महतारी छोड़ी ॥
चिर सहचरी "रयाज़ी" छोड़ी रम्य तटी रावी छोड़ी ।
शिखा-सूत्र के साथ हाय ! उन बोली पञ्जाबी छोड़ी ॥ ३ ॥

धन्य पञ्चनद भूमि जहां इस बड़भागी ने जन्म लिया ।
धन्य जनक-जननी जिनके घर इस त्यागी ने जन्म लिया ॥
धन्य सती जिसका पति मरने से पहिले हो जाय अमर ।
धन्य धन्य सन्तान पिता जिनका जगदीश्वर पर निर्भर ॥ ४ ॥

शोक ग्रसित हो गई लवपुरी उसकी हुई बिदाई जब ।
द्रवीभूत कैसे न होय मन ? संन्यासी हो भाई जब ॥
खिन्न, अश्रुमुख वृद्ध लगे कहने "मङ्गल तव मारग हो ।
जीवन् मुक्ति सहाय ब्रह्म-विद्या में सत्वर पारग हो ॥ ५ ॥

कुछ मित्रों ने हृदय थाम कर कहा, कि प्यारे ! सुन लेना ।
बात अन्त को आज हमारी ज़रा ध्यान इस पर देना ॥

समदर्शी ऋषि मुनियों को भी भारत प्यारा लगता था।
इस कारण यह विद्या-बल में जग से न्यारा लगता था ॥ ६ ॥

सर्व त्याग कर महा-भाग जो देशोन्नति में दे जीवन।
धन्यवाद देते हैं देवगण भी उसका हो प्रमुदित मन ॥
अपनी भाषा भेष-भाव औ भोजन प्यारे भाइन को।
नहीं समझता उत्तम, समझो, उससे भली लुगाइन को ॥ ७ ॥

"एवमस्तु" कर उच्चारन इन सब के उसने उत्तर में।
कहा "अलविदा" और चला वह मनभावन उस औसर में ॥
लगे वर्षने पुष्प और जय जय की तब हो उठी ध्वनी।
मानो भिक्षुक नहीं, वहां से चला विश्व का कोई धनी ॥ ८ ॥

ज्यों नगरी में होय स्वच्छता जब आता है कोई लाट।
त्यों वन पर्वत प्रकृति-परिष्कृत हुए समझ मानो सम्राट ॥
निष्कण्टक पथ हुआ पवन से वारिद ने जल छिड़क दिया।
कड़क तड़ित ने दिई सलामी आतपत्र वृक्षों ने किया ॥ ९ ॥

विहङ्ग कुल ने निज कल-रव से उसका स्वागत गान किया।
श्वापद शान्त हुए मृगगण ने दक्षिण में आ मान किया ॥
श्रेणीबद्ध फलित तरुओं ने उसको झुक कर किया प्रणाम।
पुष्पित लता और बिरवों ने कुसुम बिछाए राह तमाम ॥ १० ॥

खड़ा हिमालय निज उन्नत पर मस्तक तत्पद धारन को।
हुई तरङ्गित सुर धुनि तव अभिषेक पुनीत करावन को ॥
शिक्षा देती मानो सबको जननी-सदृश प्रकृति सारी।
विषय-विरक्त-ब्रह्म-चिंतन-रत नर के सब आज्ञाकारी ॥ ११ ॥

—एक विहारी

(कविता-कुसुम माल से उद्धृत)

श्री रामतीर्थ ग्रन्थावली

के

गत वर्षों के १८ भाग छे छे भागों के तीन सैटों (खण्डों) में विभक्त तैयार हैं।

तीनों सैटों के सम्पूर्ण पृष्ठ लगभग २५०० हैं

मूल्य	प्रति सैट साधारण संस्करण	बिना जिल्द	३)
,,	फुटकर भाग ,,	,,	॥=)
,,	प्रति सैट विशेष संस्करण	सजिल्द	४॥)
,,	फुटकर भाग ,,	,,	॥।=)

डाक और पैकिट खर्च ग्राहक के ज़िम्मे।

वर्तमान वर्ष अर्थात् दीपमालिका सं० १६८०

तक लगभग १००० पृष्ट के छे भाग प्रकाशित होंगे।

उनका पेशगी वार्षिक शुल्क निम्न लिखित रीति से होगा।

१—प्रत्येक भाग केवल बुक पैकिट द्वारा मंगाने वाले से बिना जिल्द ३) रु० और सजिल्द ४॥) रु०

२—प्रत्येक भाग रजिस्टर्ड बुकपैकिट द्वारा मंगाने वाले से बिना जिल्द ३॥।) रु० और सजिल्द ५।) रु०

३—प्रत्येक भाग वी० पी० द्वारा मंगाने वाले को ॥) पेशगी अपना नाम दर्ज रजिस्टर्ड कराने के लिये भेजने होंगे, फिर उसे भी वार्षिक शुल्क के भाव से भाग मिलेंगे।

उक्त रीत्यानुसार स्थाई ग्राहक बनने के लिये शीघ्र शुल्क भेजिये या वी० पी० द्वारा भाग भेजने की आज्ञा दीजिये।

मैनेजर,

श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग, लखनऊ।